॥ श्रीः ॥

लक्ष्मीवेङ्कटेश्वराय नमः ।

अथ

गोरक्षपद्धतिः

राजधानी-टीहरी. जिला-गढवालनिवासि-
पण्डितमहीधरशर्मकृतभाषानुवादसहिता.

सा च

शास्त्रिभिः शोधयित्वा
श्रीकृष्णदासात्मज-गङ्गाविष्णुना
स्वकीये
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " मुद्रणागारे
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शके १८१५ संवत् १९५०

कल्याण-(मुंबई)

प्रस्तावना–

समस्तसाधनाओंका मूल योग है. तप, जप, सन्यास, उपानषद्ज्ञानआदि मोक्षहेतु अनेक हैं किंच सर्वोत्कृष्ट योगही है इसीके प्रभावसे शिव सर्वसामर्थ्य, ब्रह्मा कर्त्ता, विष्णु पालक है. इसके मुख्यकर्त्ता शिवजीने पार्वतीजीसे कहा ब्रह्माजीके सेवन करनेपर योगियाज्ञवल्क्य स्मृति बनीहै. (विष्णु) श्रीकृष्णनेभी गीता, एवं भागवतके ग्यारहवें स्कंधमें कहाहै. इसके मुख्यआचार्य्य (आदिनाथ) शिवजी हैं. इन्हींसे नाथसंप्रदाय प्रवृत्तभया. एकसमय आदिनाथ किसी द्वीपमें पार्वतीजीको योग सुनारहेथे वह एक मछलीने सुनकरही दिव्यज्ञान तथा दिव्यदेह पाया यही मत्स्येंद्रनाथ भये. और मत्स्येंद्रनाथ शावरनाथ (जिन्होंने सावरग्रंथ देशभाषामें बनायेहै) आनंदभैरवनाथ, चौरंगी आदियोंसे योग पाय यथेच्छ विचरतेथे कि, एकस्थानमें हातपाँव कटेहुये चोरको देखा. उक्त महात्माओंके कृपावलोकनसे उसके हातपाँव उगआये तथा ज्ञानभी होगया मत्स्येंद्रनाथके कृपासे योग पायकर चौरंगिया नाम योगिसिद्ध विख्यातभया और मीननाथ, गोरक्षनाथ, विरूपाक्ष, बिलेशय, मंथानभैरव, सिद्धबुद्ध, कंथडी, कोरंटक, सुरानंद, सिद्धपाद, चर्पटी, कानेरी, पूज्यपाद, नित्यानंद, निरंजन, कपाली, बिंदुनाथ, काकचंडीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, घोडाचोली, टिंटिणी, भानुकी, नार-

देव, खंड, कापालिक, तारानाथ इत्यादि योगसिद्धि पायकर योगाचार्य हैं. योगहीके प्रभावसे महासिद्ध अखंडऐश्वर्यवान् होकर मृत्युको जीत ब्रह्मानंदमें मग्न रह ब्रह्मांडमें विचरतेहैं. इनमेंसे मुख्य मत्स्येंद्रनाथ गोरक्षनाथ योगविद्याके आचार्य भये. गोरक्षनाथ मुमुक्षुजनोंके उपकारार्थ राजयोग, हठयोग आदि बहुविस्तार एवं बहुसाधनासाध्य जानकर, "यह गोरक्ष-पद्धति" नामा ग्रंथ २०० श्लोकमें सर्वसमुच्चय सारभूत प्रकटकिया सर्वसाधारणके सुबोधार्थ महीधरशर्मा राजधानी टीहरी जिला गढवालनिवासीनें इसका भाषानुवाद करके प्रकाशितकिया.

इसग्रंथके प्रथम मंगलाचारणसे (५) श्लोकमें विषयप्रयोजन संबंध अधिकारी कहेहैं. (१) में योगाभ्यासका फल, (१) में षडंगके नाम, (५) में आसन, (१२) में षट्चक्रनिरूपण, (८) में दशनाडी स्थानोंसहित, (१४) में दशवायु, (१०) में शक्तिचालन, (२६) में महामुद्राआदि, (७) में प्रणवाभ्यास, प्राणायामप्रशंसा, (४) में प्राणायामका प्रकार, (८) में नाडीशोधन, इतने विषय पूर्वशतकमें. तथा (२१) में प्राणयामका विस्तार, (३०) में प्रत्याहारविधि, (९) में धारणा, (२४) में ध्यान, (१३) में समाधि, (४) में मुक्तिसोपान, योगशास्त्राभ्यासका फल, इतने विषय उत्तरशतकमें कहेहै. ऐसी यह गोरक्षपद्धति योगमार्ग जाननेवालोंको अतिउत्तम तथा सुगम है. योगमार्गका प्रयोजन सभी

शास्त्रोंमें पडताहै. विशेषतः संध्या, पूजनआदि द्विजन्माओंके नित्यकर्मभी विना इसके सिद्ध नहींहोते जैसे संध्यामें प्रथम " बद्धपद्मासनो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् " तथा पूजनमें " स्नातः शुचिः प्राङ्मुखोपविश्य प्राणानायम्य " इत्यादि सर्वत्र विधिवचन है. यदि योग न जाने तो प्राणायाम पद्मासनआदि कहांसे जाने. इनके न जाननेसे समस्त संध्यावंदनादिसाधन निरर्थक है. इससमयमें बहुधा लोग नाकपर हाथ लगानेको प्राणायाम समझतेहैं. पद्मासनादियोंका तो नामभी नहींहै. तब कहांसे सिद्धिहोवे इसीहेतु नास्तिकलोग असिद्ध तथा पोप (ठग) आदि निंद्यशब्दोंसे अपने मुखविवरोंको दूषित करतेहैं यदि योगाभ्यास करें तो सिद्धि प्रत्यक्ष होकर अपना उद्धार हो तथा दूषकोंके उन विवरोंमें मिट्टी पडे. और योगग्रंथ बहुत तथा कठिन हैं. ये २ शतक थोडेहीमें ज्ञान देतेहैं इसहेतु मैंने भाषाटीका कियाहै कि सभीसज्जन इसे देख थोडाही गुरूपदिष्ट होकर सर्वार्थसाधनयोगमार्गकी महिमा जानजायँगे. पाठकोंके सुबोधार्थ मैंने अनेकप्रसिद्ध योगग्रंथोंसे इसे बढायकर गोरक्षपद्धति करदिया. और यह ग्रंथ " लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखानेके अधिकारी-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीको सर्वहक्कसहित देदियाहै जो यह उन्होंनें आपके छापाखानेमें छपाकर प्रसिद्धकियाहै.

सही-

पंडित-महीधरशर्मा,

जिला-गढवाल, राजधानी-टीहरी

जाहिरात

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

भाषानुवादसहिता-

गोरक्षपद्धतिः

श्रीआदिनाथं स्वगुरुं हरिं मुनिं
गोरक्षशास्त्रस्य प्रणम्य योगिनम् ।
भाषाविवृत्तिं कुरुते महीधरो
योगे सुबोधः खलु जायते यया ॥ १ ॥

श्री (आदिनाथ) शिवजी, तथा निजगुरु, हरिमुनि योगीको प्रणाम करके महीधरनामा गोरक्षयोगशास्त्र जो योगींद्रगोरक्षनाथनें दोशतकमें शिष्योपकारार्थ बनायाहै. उसकी भाषाटीका करताहै, जिससे योगमार्गमें सभीको सुगमतासे बोध होताहै. योगपदका अर्थ मेल है जैसे 'ह' का अर्थ सूर्य्य 'ठ' का चंद्रमा है इनके (योग) मेलको (हठयोग) कहतेहैं. इसीको राजयोगभी कहतेहैं, प्राण, अपानवायु जिनकी सूर्यचंद्रमा संज्ञा है, इनका ऐक्य करनेवाला जो प्राणायाम उसे हठयोग कहतेहैं ॥ १ ॥

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम् ।
यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥ २ ॥

शिष्यको आत्माके तत्वबोधनिमित्त गुरुस्वरूप धारणकर परमगुरु श्रीपरमात्माको सहस्रदलकमलमें भावनापूर्वक प्रथम ग्रंथारंभमें विघ्नविघातार्थ प्रणाम करतेहैं, कि जीवब्रह्मकी ऐक्यता योगशास्त्रका प्रयोजन है. सद्गुरुके समीप भक्तिपूर्वक रहनेसे शिष्यका पांचभौतिक शरीरभी आनंदमय होजाताहै. आनंदही परब्रह्मका रूप है जैसे श्रुतिभी कहतीहै कि "आनन्दो ब्रह्मणो रूपम्" यदि ऐसा न हो तो उसकी पैछानभी नहींहोसके क्यों कि " न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा " इत्यादि गीता । एवं वेदांतग्रंथोंमें लिखाहै कि उसका रूप तथा जन्म, मरण, मध्य और रंग चिह्न मूर्तिआदि कुछ नहींहै. केवल आनंदमय स्वयंप्रकाशमान है. तथा, निर्विकल्प आनंदमय होजानेकोही मुक्ति कहतेहैं. ऐसे परमआनंदस्वरूप परब्रह्मको (जिसका शरीरभी आनंदही है) वंदना करके ग्रंथारंभ करतेहैं जिसके सानिध्य (सम्मुख) होनेंसे, अर्थात् (केवलानुभवानंद) वह आनंदात्मा परमात्मा केवल मनके मनन अनुभव विचार करनेसे अपनेही बीच पायाजाताहै. न कि इतस्ततः तीर्थयात्रादि फिरनेंसे, यह अनुभव केवल योगहीसे साध्य है. यह ज्ञानकी प्रथम भूमिका है. नाडीशोधन, वायुशोधन, ध्यान धारणा आदिविना एवं गुरुकृपाविना नहींमिलता. विना ज्ञानके मुक्ति नहींमिलती श्रुतिभी कहतीहै कि " ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" मुक्तिपदार्थ वही आनंदमय होजाताहै. योगसे ज्ञान प्रापके जीवपरमात्माका एकभाव होनेंमें वह आनंदस्वरूप पर-

ब्रह्म साक्षात्कार होताहै इस ज्ञानगम्यके प्रत्यक्षमात्र होनेहीसे परमचिदानंदमय आपही योगी होजाताहै. वैसे ज्ञानकी सात भूमिका हैं. ज्ञानभूमि १ विचारणा २ तनुमानसा ३ सत्त्वापत्ति ४ संसक्तिनामिका ५ पदार्थाभाविनी ६ तुर्यगा ७ ये सात हैं. विवेक वैराग्य हैं प्रथम जिसमें ऐसी तीव्र मुमुक्षारूप पहिली. श्रवणमननरूपा दूसरी. मनमें अनेकअर्थ संकल्प विकल्प उत्पन्न तथा नाश होतेहैं. इन सभीको छोडके, (सत्) एकार्थमें वृत्ति होनी. (तनुमानसा) तीसरी. ये तीनं साधनभूमि हैं इनसे जब अंतःकरण शुद्ध हो तब"अहं ब्रह्मास्मि " मैं ब्रह्म हूं ऐसा योगी कहताहै.समस्त साधन पूजनजपादिकमें " अहं ब्रह्मास्मीति चिरं भावयेत् " लिखाहै,यह भावनाविना उक्त तीन भूमिका साधेहोतेही नहींहैं इसलिये विना मार्गके कुछभी साधन नहींहोताहै चौथी, सत्त्वापत्ति ज्ञानभूमि यही फलभूमि है इसमें जब योगी प्राप्तहोवे तब ब्रह्मवित् कहाताहै. इसी सत्त्वापत्तिभूमिमें समीपही उट्टी जो सिद्धि उसमें आसक्त न होना,इसे असंसक्तिनाम पांचवी ज्ञानभूमि कहतेहैं. इसमें जब योगी प्राप्त होवे तो उसे ब्रह्मविद्वर कहतेहैं. जिसमें परब्रह्मसे व्यतिरिक्त अर्थको भावना न करे वह परार्थभाविनी छठी ज्ञानभूमि है इसमें जब योगी प्राप्तहोताहै तो वह दूसरेके बोधन करनेसे मात्र प्रबुद्ध होताहै. नहींतो एकाग्रशून्याकारही रहताहै उसे ब्रह्मविद्वरीयान् कहतेहैं. तुर्यगा नाम सातवीं भूमि है इसमें योगी प्राप्तहोनेसे ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहतेहैं. इतने साधनाओंसे स्वात्माराम

चिदानंद,परमानंद, चिन्मय, आदियोगी आपही होजाताहै. कालरहित होताहै. " अन्तर्निश्चलितात्मदीपकलिकास्वाधारबन्धादिभिर्यो योगी युगकल्पकालकलनात्तत्त्वं च जेगीयते । ज्ञानामोदमहोदधिः समभवद्यत्रादिनाथः स्वयं व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं श्रीमीननाथं भजे " जो मीननाथयोगीश्वर मूलाधारबंध, उड्डीयानबंध, जालंधरबंध, आदि योगाभ्याससे हृदयकमलमें निश्चलदीपककी ज्योतिसरीखी परमात्माकी कला साक्षात्कार करके श्वासा, पला, घटी, प्रहर, दिन, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, मन्वंतर, कल्प, आदि, निरंतर पुनः पुनः फिरनेवाला है स्वरूप जिसका ऐसे कालको, तथा जलादि २५ तत्त्वोंको पहिचानके योगाभ्याससे जीतताहै तथा ज्ञानानंदरूपी समुद्र होकर गुप्तप्रकट अर्थात् सगुण निर्गुण होनेकी सामर्थ्य रखनेवाला (आदिनाथ) शिवस्वरूपकी भावना नित्यकरनेके अभ्याससे, आपही साक्षात् शिव होगयाहै. ऐसे योगीश्वर श्रीमीननाथको दिनरात नमस्काररूप सेवन करताहूं ॥ २ ॥

नमस्कृत्य गुरुं भक्त्या गोरक्षो ज्ञानमुत्तमम् ।
अभीष्टं योगिनां ब्रूते परमानन्दकारकम् ॥ ३ ॥

योगी गोरक्षनाथ भक्तिपूर्वक गुरुको प्रणाम करके पूर्वजन्मके योगसेवनसे इस जन्ममें पूर्णयोगमार्गका बोध देनेवाला योगशास्त्र कहतेहैं. जिससे योगियोंको 'अभीष्ट' मनोवांछित मिलताहै तथा परमयोगानंद यद्वा ब्रह्मानंद होताहै. कर्म और भक्तिसे

जब चित्त शुद्ध होवै तब योगशास्त्रमें अधिकारी होताहै ॥ ३॥

गोरक्षसंहितां वक्ति योगिनां हितकाम्यया ।
ध्रुवं यस्यावबोधेन जायते परमं पदम् ॥ ४ ॥

योगिजनोंके हितकेलिये योगींद्र गोरक्षनाथ गोरक्षसंहिता
योगशास्त्र कहताहै, जिसका बोध होनेसे योगीको (परमपद)
निजनोंके होताहै यद्वा वह मिलताहै जिसमें पहुँचकर पुन-
शमन करता हटिआना नहींहोता ॥ ४ ॥

आसनं भक्तिसोपानमेतत्कालस्य वञ्चनम् ।
ध्यानं सम॥ मनो भोगादासक्तं परमात्मनि ॥ ५ ॥

तसे मन विषयभोगोंसे हठजानेकर परमात्मा
(ईश्वर) में, आसक्त होजावै तब योगी काल तथा मृत्युको
जीतकर (जरा) बुढापा (मृत्यु) मरणको जीतताहै. मुक्तिके
(सोपान)सीढी यही कर्म है. और कालकी वंचनाभी यही है॥ ५

द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम् ।
शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥ ६ ॥

सज्जनको संबोधन करके, गोरक्षनाथ कहतेहै कि,हे सत्तमाः!
श्रेष्टजनों ! वेदरूपी कल्पवृक्षके फल इसयोगशास्त्रका सेवन करो
जिसके (शाखा) टैनियां योगिरूपी (द्विज) पक्षि अथवा मु-
चलदार्ष्ट सेषित हैं और संसारके तीन प्रकारके (ताप) क्लेशोंको
र) दरवाजे है ॥ ६ ॥

सासाहै. यद्वाप्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
लकर मोक्षमार्गध्यानं त्रैतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट् ॥ ७ ॥

प्रथम आसन सिद्धकरके क्रमशः प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधिका अभ्यास करना ये योगके छः अंग हैं. इनके पृथक् विस्तार आगे कहेंगे. यमनियमसंपन्न योगीको क्रमपूर्वक अभ्यासकरके समाधिका लाभ होताहै जिससे निर्विकल्प समाधिसे राजयोग सिद्ध होताहै. तब चिदानंदस्वरूप आप ही होके योगानंदको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥

॥ अथासनानि ॥

आसनानि च तावन्ति यावन्तो जीवजन्तवः ।
एतेषामखिलान् भेदान् विजानाति महेश्वरः ॥ ८ ॥

आसनोंका विस्तार कहतेहैं कि, जितने जीवमात्र अर्थात् चौराशी लक्ष योनि हैं इतनेही आसनभी उन्हींके शरीरचेष्टानुसार हैं इनके प्रत्येकभेदोंके जाननेहारे केवल शिवजी मात्र हैं और कोई नहींजानता ॥ ८ ॥

चतुराशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम् ।
ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम् ॥ ९ ॥

चौराशीलक्ष आसनोंके भेद मनुष्योंसे नजानेजायंगे इसप्रकार करुणामय शिवजीने सर्वसाधारणके उपकारहेतु चौरासी (८४) मात्र आसन योगशास्त्रमें प्रगटकिये. यही सूर्यजन्य- हैं ॥ ९ ॥ ेवाला योग-

आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृत वांछित मिल-
एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमला और भक्तिसे

इन ८४ आसनोंमेंसी बहुतविस्तार होनेंसे योगधारण क-रनेवालोंके उपकारहेतु दोही आसन मुख्य कहेहैं. इससे इसग्रंथमें सुगमताकेलिये सर्वसंमत एक सिद्धासन दूसरा पद्मासन सविस्तार कहाजाताहै ॥ १० ॥

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् ।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियो चलदृशा पश्येद्भ्रुवोरन्तरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ११ ॥

सर्वोत्कृष्ट दो आसनोंमेंसे प्रथम सिद्धासनकी विधि कहतेहैं कि, गुदा और लिंगके बीचमें योनि (कुंडलिनीका) स्थान है. इसको वामपादके एडीसे दृढ पीडन (दबाव) करे दाहिने पैर-के एडी लिंगके ऊपर लगाकर दबावे दोनहूं पैरोंकी एडियां नीचे ऊपर बराबर होजातीहैं तथा दोनहूं पैरोंके अंगुष्ठ जंघा और गुल्फोंके बीच नीच छिपजातेहैं इनके दबावसे योनिस्था-नके तले ऊपरके दो इंद्रिय गुदा, उपस्थ रुकजातेहैं. तदनंतर हृदयके चार अंगुल ऊपर (चिबुक) ठोडी स्थिरकरे और समस्तइंद्रियोंसे हटाकर एकाग्रचित्त करे तथा दोनहूं नेत्रोंसे अ-चलदृष्टि कर (भ्रुकुटि) भ्रूमध्य देखतारहै यह मोक्षरूपी (द्वा-र) दरवाजे (कपाट) के किवाडोंकें खोलकर मोक्षमार्ग दि-खाताहै. यद्वा जो कुंडलीमें रुकाहुवा सुषुम्णाद्वार उसे खो-लकर मोक्षमार्ग (सुषुम्णा) के द्वारा मोक्षस्थान सहस्रदलक-

मलकर्णिकांतर्गत परमात्मामें पहुँचानेका यत्न करताहै यह सिद्धासन है ॥ ११ ॥

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकन्नासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥१२॥

बाये (ऊरु) जानुमूलमें दाहिना पैर उत्तानकरके तथा दक्षिण (ऊरु) जानुमूले वामपाद वैसेही स्थापनकरके दाहिने हाथको पीठपीछे घुमायके दाहिने पैरके अँगुठेको ग्रहणकरे तथा बायें हाथको पीठपीछे घुमायके दाहिने हाथ ऊपरसे लेजायकर बांयें पैरके अंगुष्ठको ग्रहण करे. तद (चिबुक) ठोडीकों छातिसे लगाय, दोनहू नेत्रसे नासिकाका अग्रभाग निरंतर देखतारहे. यह योगियोंके समस्तरोगविकार नाश करनेवाला बद्धपद्मासन है ॥ १२ ॥

'प्रकारांतरसेभी पद्मासन कहाहै इसलिये मैं ग्रंथांतरमतसैं मत्स्येंद्रनाथके मतकाभी लिखताहूं'—

" उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।
ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशौ ॥ १ ॥
नासाग्रे विन्यसेद्राजदन्तमूले तु जिह्वया ।
उत्तम्भ्य चिबुकं वक्षस्युत्थाप्य पवनं शनैः ॥ २ ॥
इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते बुधैः " ॥ ३ ॥

(ऊरु) जानूमूलमें पूर्वोक्तप्रकारसे चरण (जैसे दक्षिण-ऊरुमें वाम, वाममें दक्षिणचरण, उत्तान अर्थात, पैरोंके पीठ जानुपर लगी रहें.) स्थापन करके दोनहूं हात सीधे एडियोंके ऊपर नीचे वामऊपर दक्षिणहस्त रखके दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर निश्चल रक्खे तदनंतर (राजदंत) जाडोंके मूल दक्षिणवाम दोनहूं-में जिह्वाकर ऊर्ध्वस्तंभन करे (यह जिह्वाबंध गुरुमुखसे जानना चाहिये) (जिह्वाबंध मूलबंधका विस्तार ५७ । ५८ श्लोकमें कहेंगे) तथा (चिबुक) ठोडिको चार अंगुल अंतर छोडकर छातिसे लगाय मंदमंदवायुको उठावे. यह मूलबंध है. (यहभी गुरुमुखबोध्य है) यह पद्मासन मत्स्येन्द्रनाथके मतका है. संपूर्ण-रोगोंको नष्ट करताहै. जो संसारमें भाग्यहीन हैं उनको दुर्लभ है. बुद्धिमान् एवं पुण्यवान् पुरुषोंको गुरुकृपासे मिलताहै। १।२।३॥

॥ अथ षट्चक्रनिरूपणम् ॥

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः॥१३॥

विषमवासनासे मन चंचल रहताहै रोकेसे रुकता नहीं विना मन रोके योगसिद्धि नहींहोती. मन रोकनेकेलिये कुछ निमित्त (अवलंबन) अवश्य होनाचाहिये. इसहेतु छःचक, सोलह आधार, दो लक्ष्य, पांच आकाश, ये चार प्रकारभेद (सर्वउनतीस) कहतेहैं, कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा ये छःचक हैं इनका विस्तार आगे कहेंगे आधार

सोलह हैं इनके विशेषविस्तार अतिगुह्य होनेंसे श्रीगोरक्षनाथनें यहां प्रगट नहींकहे और इनके प्रकटताविना सर्वसाधारणको बोध होना असंभव है इसलिये जैसा गुरुकृपासे जाना. यहां ग्रंथांतरीयमतसे प्रकटकरताहूं. प्रथम आधार पादांगुष्ठ है इसपर एकाग्रदृष्टि करके ज्योतिचैतन्य करै इससे दृष्टि स्थिर होतीहै १ दूसरा आधार मूलाधार. इसे पावोंकी एडिसे अचेतन करना इससे अग्निदीप्त होतीहै २ तीसरा गुह्याधार. इसके संकोचविकाशके अभ्यास करनेंसे अपना वायु फिरके वज्रगर्भनाडीमें प्रवेश कर बिंदुचक्रमें जाताहै इससे शुक्रस्तंभन एवं (वज्रोली) रेत योनिमें पात न करके पुनः आकोचनक्रमसे वज्रनाडीद्वारा बिंदुस्थानमें प्राप्तकरनेकी सामर्थ्य होतीहै ३।४ पंचम उड्डीयानबंध आधार है. पश्चिमतान आसन बांधके गुदाको संकोचन करे इससे मल मूत्र कृमिका नाश होताहै ५ छठा नाभिमंडलाधार. जिसमें चैतन्य ज्योतिःस्वरूपका ध्यान करनेंसे एवं प्रणवके जपसे नाद उत्पन्नहोताहै६ सातवां हृदयाधार. इसमें प्राणवायुको रोध करनेंसे हृदयकमल विकासित होताहै ७ आठवां कंठाधार. इसमें ढोडी हृदयपर दृढ लगायके ध्यान करे तो इडा-पिंगलामें वहताहुआ वायु स्थिर होताहै ८ नवम क्षुद्रघंटिकाधार. कंठमूल है इसमें ऊपरसे जो दो लिंगाकार ऊपरसे लटकतीहैं उन जिह्वा पौंछावे तो ब्रह्मरंध्रमें चंद्रमंडलसे वहताहुआ अमृतरस मिलताहै ९ दशम जिह्वामूलाधार. इसमें खेचरीमुद्राके प्रकारसे जिह्वाग्रसे मथन करे, तो खेचरीसिद्धि होतीहै १० ग्यारहवां जिह्वाका अधोभा-

गाधार. जिसमें जिह्वाग्रसे मथनकरके दिव्यकविताशक्ति होतीहै ११ बारहवां ऊर्ध्वदंत मूलाधार. जिसमें जिह्वाग्रस्थापनके अभ्याससे रोगशांति होतीहै १२ तेरहवां नाशिकाग्राधार. जिसमें दृष्टि स्थिरकरनेंसे मन स्थिर होताहै १३ चौदहवां नासिकामूलाधार. जिसमें दृष्टि स्थिर करनेंसे छः महीनेके निरंतर अभ्यासकरके ज्योति प्रत्यक्ष होतीहै १४ पंद्रहवां भ्रूमध्याधार. जिसमें दृष्टि अचलदृष्टिके अभ्यासकरके सूर्यकिरणोंके समान ज्योति प्रकाश होतीहै इसीअभ्यासके दृढ होनेंपर सूर्याकाशमें मनका लय होताहै १५ सोलहवां नेत्राधार. जिनके मूलमें अंगुलिसे मीच तेमें वर्तुलाकार बिंदुसमान इंद्रधनुषके समान रंगकी ज्योति है इसज्योतिके देखनेका अभ्यासकरके ज्योति प्रत्यक्ष होतीहै १६ ये सोलह आधार हैं. अथवा मूलाधार१ स्वाधिष्ठान २ मणिपूर ३ अनाहत ४ विशुद्ध ५ आज्ञाचक्र ६ बिंदु ७ अर्द्धेंदु ८ रोधिनी ९ नाद १० नादांत ११ शक्ति १२ व्यापिका१३समनी १४ रोधिनी १५ ध्रुवमंडल १६ ये सोलह (१६) आधार हैं ब्रह्म तथा अपनेंमें अभेद समझकर भावना करनेंसे सिद्धि होतीहै अब (दो) लक्ष्य कहतेहैं ये दो प्रकार बाह्य आभ्यंतरीय हैं देखनेके उपयोगी नासिका तथा भ्रूमध्ये इत्यादि बाह्यलक्ष्य हैं मूलाधारचक्र, हृदयकमल इत्यादि आभ्यंतरलक्ष्य हैं. अथ पांच आकाश इसप्रकार है कि प्रथम श्वेतवर्ण ज्योतिरूप आकाश है इसके भीतर रक्तवर्ण ज्योतिरूप प्रकाश है इसके भीतर धूम्रवर्ण ज्योतिरूप महा-

काश है इसके भीतर नीलवर्ण ज्योतिस्वरूप तत्त्वाकाश है इसके भीतर (विद्युत) बिजुलीके वर्णका ज्योतिस्वरूप सूर्य्याकाश है ये पांच आकाश हैं इतने ६ चक्र १६ आधार २ लक्ष्य ५ आकाश शरीरमें हैं इन्हे जो योगी नहींपहचानता उसको योगसिद्धि नहींहोती ॥ १३ ॥

एकस्तम्भं नवद्वारं गृहं पञ्चाधिदैवतम् ।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः॥१४॥

शरीरस्तंभरूपी गृह है इसमें सकलवासनाओंका आश्रय मन है यही स्तंभारूप होकर समस्तशरीरको थामे रहताहै जिसके मुख १ नेत्र २ नासिका २ कर्ण २ गुह्य १ लिंग १ ये ९ द्वार हैं तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पंचतत्त्वोंके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, अधिदेवता हैं ऐसे शरीररूपी गृहको जो योगाभ्यासी नहींजानता वह योगसिद्धि कैसें पायसकताहै ॥१४॥

चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम् ।
नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यसंख्यादलं हृदि ॥ १५ ॥
कण्ठे स्यात् षोडशदलं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ।
सहस्रदलमाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे ॥ १६ ॥

षट्चक्रोंके पृथक् वर्णन है कि प्रथम मूलाधारचक्र गुदद्वारमें पीले वर्णका अधोमुख कमल है जिसे ४ दलोंमें व, श, ष, स, बीज शोभितहैं आठों दिशामें आठ शूलोंसे वेष्टित पीतवर्ण मध्ये कर्णिकामें चतुष्कोण हाथीके ऊपर आरूढ

जिसके (पार्श्वे) बगलमें लं बीज है और चार हाथ चार मुखका ब्रह्मा कोटिसूर्य्यसमान प्रकाशमान एवं डाकिनीशक्तिसे युक्त है वहीं देदीप्यमान त्रिकोणाकार कामाख्या पीठ है तिसके मध्य-में पश्चिममुख स्वयंभू लिंग है उसके बीचमें बिजुली समान च-मकवाली साढेतीन फेरे (वृत्त) से वेष्टित होकर, सुषुम्णाके द्वा-रको रोकके सोयाहुआ सर्प जैसा कुण्डलिनी महाशक्ति है जैसे पृथ्वीआधार शेष तैसेही शरीरका आधार यह है बिना इसके जागे और उपाय योगके व्यर्थ है. इसलिये प्रथम इसका बोधन करना मुख्य है १ दूसरा स्वाधिष्ठानचक्र. लिंगमूलमें रक्तवर्ण ऊर्ध्वमुख षड्दल ब, भ, म, य, र, ल, इन ६ वर्णसे शोभित कमल है शुक्रवर्णकर्णिकामें अर्द्धचंद्राकार जलमंडल है इसके बीचमें (वं) बीज है जिसके (पार्श्वे) बगलमें श्रीवत्सकौस्तुभ-पीतांबर-वनमालाओंसे शोभित चतुर्भुज विष्णु शाकिनीशक्ति-सहित हैं २ तीसरा मणिपूरचक्र. नाभिमूलमें नीलवर्ण ऊर्ध्वमुख दशदलकमल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, इन १० व-र्णोंसे शोभित है मध्यकर्णिकामें स्वस्तिकाकार तेजोमंडल है. इसके मध्यमें सूर्यके समान तेजधारी मेषवाहन (रं) बीज चतुर्भु-ज है इसके पार्श्वमें रक्तवर्ण विभूतिभूषित, नीलवर्ण, चतुर्भुज लाकिनीशक्तिसहित महारुद्र हैं ३ चौथा अनाहतचक्र. हृदयमें द्वादशदलकमल ऊर्ध्वमुख क, ख, ग, घ ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, [redacted] १२ बीजोंसे शोभित है उसके कर्णिकामें धूम्रवर्ण, षट्कोण वायुमंडलके मध्यमें धूम्रवर्ण, चतुर्बाहु, कृष्णमृगवाहन

यं) बीज है. इसके पार्श्वमें अभयमुद्रा धारणकरके काकिनीशक्तिसहित ईश्वर हैं कर्णिकाके त्रिकोणमें सुवर्णवर्णबाणलिंग है यह पूर्णागिरि पीठ कहाताहै ४ पांचवां विशुद्धचक्र.कंठस्थानमें रक्तवर्ण, ऊर्ध्वमुख, षोडशदलकमल अ,आ, इ,ई,उ,ऊ, ऋ, ॠ,लृ, ॡ,ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, इन १६ वर्णोंसे शोभित है स्फटिकवर्णकर्णिकामें वर्तुलाकार आकाशमंडल जिसमें निष्कलंक पूर्णचंद्रमा है इसके मध्यमें श्वेतहाथी वाहन, पाश, अभय, वर, अंकुश, धारणकरता आकाश बीज (हं) इसके पार्श्वमें शाकिनीशक्तिसहित सदाशिव हैं यह जालंधरपीठ कहाताहै ५ छठा आज्ञाचक्र. भ्रूमध्यमें श्वेतवर्ण ऊर्ध्वमुख द्विदल ह, क्ष, इन २ बीजोंसे शोभित कमल है इसके कर्णिकामें हाकिनीशक्तिसहित शिव है कर्णिकाके त्रिकोणमें, (इतरलिंग) नामा शिवलिंग है. यही मनका स्थान है उड्डीयानपीठभी इसीको कहतेहैं ६ इसके ऊपर सहस्रदलकमल ब्रह्मरंध्रमें श्वेतवर्ण पूर्णचंद्रसमान मुख परमानंदस्वरूप ह, ळ, क्ष इन ३ वर्णोंसे शोभित है त्रिकोणकर्णिकामें पूर्णचंद्रमंडल जिसके मध्यमें बिजुलीके समान चमकीला परमआनंदरूप देदीप्यमान ज्योति है इसमें चिदानंदस्वरूप परमशिव विराजमान हैं इनके पार्श्वमें सहस्रसूर्यके समान तेजधारी प्रबोधस्वरूप अर्द्धचंद्राकार निर्वाणकला विराजमान है. इसके बीचमें कोटिसूर्यसमान तेजधारी रोमसमान सूक्ष्म निर्वाणशक्ति विराजमान है इनके मध्यमें मन तथा वचनसे अगम्य केवल योगसे गम्य चिदानंदस्वरूपसे पर ब्रह्म

अतिपर परमशिवपद है जिसको परब्रह्मपद कहतेहैं विराजमान हैं जिसके निमिषोन्मिष अर्थात् पलक खोलने मीचनेमें सृष्टि उत्पन्न और नष्ट होतीहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।
योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते ॥ १७ ॥

पहिला मूलाधार स्वाधिष्ठान इन दो चक्रोंके बीचमें योनिस्थान है यही कामरूप पीठ है. अर्थात् मूलाधारके कर्णिकामें कामरूप पीठ है ॥ १७ ॥

आधाराख्ये गुदस्थाने पङ्कजं च चतुर्दलम् ।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता॥ १८॥

मूलाधार (गुदा) में जो चतुर्दलकमल विख्यात है उसके मध्यमें त्रिकोणाकार योनि है जिसकी वंदना समस्तसिद्धजन करतेहैं पंचाशत् वर्णसे बनीहुई कामाख्या पीठ कहातीहै ॥ १८॥

योनिमध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखस्थितम् ।
मस्तके मणिवद्बिम्बं यो जानाति स योगवित्॥ १९॥

पूर्वोक्त त्रिकोणाकारयोनिमें सुषुम्णाद्वारके संमुख स्वयंभू नाम करके जो महालिंग है उसके शिरमें माणिकेसमान देदीप्यमान बिंब है यही कुंडलिनी जीवाधार शरीराधार मोक्षद्वार है इसे जो सम्यक् प्रकारसे जानताहै. उसे योगवित् कहतेहैं १९

तप्तचामीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ।
त्रिकोणं तत्पुरं वह्नेरधो मेढ्रात्प्रतिष्ठितम् ॥ २० ॥

(मेढ़) लिंगस्थानसे नीचे मूलाधारकर्णिकामें रहता तपा-

हुआ सुवर्णके समान वर्ण, एवं बिजुलीके समान चमकदमकवाला जो त्रिकोण है वही कालाग्निका स्थान है ॥ २० ॥

यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।
तस्मिन् दृष्टे महायोगे यातायातान्न विन्दते ॥२१॥

इसी त्रिकोणविषय समाधिमें अनंत (विश्व) संसारमें व्याप्त होनेहारी परमज्योति प्रकट होतीहै वही कालाग्निका रूप है जब योगी ध्यान, धारणा, समाधिकरके उक्त ज्योतिको देखने लगताहै तो उसको जन्ममरण नहींहोते अर्थात् अजरामर होजाताहै ॥ २१ ॥

स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः ।
स्वाधिष्ठानाश्रयादस्मान्मेढ्रमेवाभिधीयते ॥ २२ ॥

स्वशब्द (प्राण) इसका बोधक है इसका आश्रय (स्वाधिष्ठान) लिंगमूल है प्राणका अधिष्ठान होनेसे इसेही मेंढ्र कहाजाताहै ॥ २२ ॥

तन्तुना मणिवत्प्रोतो यत्र कन्दः सुषुम्णया ।
तन्नाभिमण्डलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् ॥ २३ ॥

नाभिमें एक कंद है. जिसे सर्वांगव्यापिनी (सिरा) नसें निकलीहैं जैसे १० नसें उपरको हैं जो शब्द, रस, गंध, श्वास जृंभा, क्षुधा, तृषा, डकार, नेत्रदृष्टि, (धारणा) मगजशक्ति इन दश कामोंको अपने २ स्थानोंमें दीपन करतीहैं तथा १० नसें नीचेको हैं वात, मूत्र, मल, शुक्र, अन्न, पान, रसको नीचे पहुँचाना इनका काम है और चार जिनकी तिर्छी गति है.

(दो) दाहिने बगल (दो) बायें बगल होकर अगणित सूक्ष्मशा-खा वनके सर्वांगमें जालेके नाईं रोमरोम प्रति पूरितहैं उनहींके मुखोंसे प्रस्वेद देहके बाहर रोमोंमें होके आताहै. तथा उन्हींके मार्गोंसे लेप, मर्दनादि पदार्थ भीतर प्रवेश करतेहैं. इसप्रकारका नाभिकंद जैसे सूत्रमें मणि पिरोया रहताहै ऐसेही सुषुम्णानाडीमें पिरोयाहै इसे मणिपूरचक्र, नाभिमंडलमें कहतेहैं ॥ २३ ॥

द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपापविवर्जिते ।
तावज्जीवो भ्रमत्येव यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥२४॥

हृदयमें द्वादशदल अनाहत चक्र है जिसमें (तत्वातीत) सत्त्व-रज तमोगुणरहित जीव है गुणातीत होनेसे पुण्यपापसेभी रहित है परंतु जब तत्त्वकी पहिचान योगाभ्याससे होजावै तब ये गुण जीवमें आतेहैं विना तत्वज्ञान जीव संसृतिमें भ्रमणही करता-रहताहै ॥ २४ ॥

॥ अथ दशनाडीवर्णनम् ॥

ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दो योनिः खगाण्डवत् ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्ना सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥ २५ ॥

लिंगमूलसे ऊपर नाभिसे कुछ नीचे कंदके सदृश समस्तना-डियोंका (मूल)उत्पत्तिस्थान पक्षिके अंडेकेसमान आकार है इससे बहत्तर ७२ हजार नाडी ऊपर नीचे तिर्छे होकर सर्वांग व्याप्त हैं ॥ २५ ॥

तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः ।

प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दश स्मृताः॥२६॥

उक्त ७२ हजार नाडियोंमें मुख्य ७२ बहत्तरही हैं इनमेंभी (प्राणवाहिनी) वायुचलानेहारी प्रधान दशही नाडी हैं ॥२६॥

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी॥२७॥
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता।
एतन्नाडीमयं चक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा॥ २८ ॥

इडा १ पिंगला २ सुषुम्णा ३ गांधारी ४ हस्तिजिह्वा ५ पूषा ६ यशस्विनी ७ अलंबुषा ८ कुहू ९ शंखिनी १० ये उक्त मुख्यनाडियोंके नाम हैं. यह नाडीमय चक्र योगाभ्यासीको अवश्य जाननायोग्य है तदनतर इन नाडीयोंमें चलनेवाले वायुको जानना तब प्राणायामसे नाडीशोधन होताहै॥२७॥२८॥

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्थिता।
सुषुम्णा मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥२९॥
दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे।
यशस्विनी वामकर्णे ह्यानने चाप्यलम्बुषा ॥ ३० ॥

नासिकाके वामभागमे इडा, दक्षिणभागमें पिंगला नाडी वहतीहै इनके मध्यमें सुषुम्णा नाडी रहतीहै इन तीनोंकी जड मूलाधारचक्रके कर्णिकाका त्रिकोण है. जिसके वामकोणसे इडा, दक्षिणकोणसें पिंगला और पश्चिमकोणसें सुषुम्णा नाडी उत्पन्न हुईहैं ये तीनों नाडी उक्तचक्रको अंकमाल कियेहैं अपने २ ओरके नासिकाछिद्रसे वहतीहै मध्य सुषुम्णा मूलाधारसें

ब्रह्मरंध्रपर्यंत है अन्य नाडी उक्तचक्रके कंदसे उत्पन्न होकर प्रत्येक रंध्रमें है जैसे वामनेत्रमें गांधारी, दक्षिण नेत्रमें हस्तिजिह्वा, दक्षिणकर्णमें पूषा, वामकर्णमें यशस्विनी, मुखमें अलंबुषा हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने च शङ्खिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडयः ॥ ३१ ॥

लिंगदेशमें कुहू, मूलस्थानमें शंखिनी ये दो उसकंदसे अधोमुख होकर नीचेको गईहै और ऊर्ध्वमुख होकर ऊपरको हैं इसप्रकार ये दश नाडी प्राणवायुके एक एक मार्गमें आश्रय करके स्थितहैं ॥ ३१ ॥

इडापिङ्गलासुषुम्णाः प्राणमार्गे समाश्रिताः ।
सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः ॥ ३२ ॥

चंद्रमा, सूर्य और अग्नि हैं देवता जिनके ऐसे इडा, पिंगला, सुषुम्णा ये तीन नाडी प्राणवायुके मार्ग हैं ॥ ३२ ॥

॥ अथ दश वायवः ॥

प्राणोपानसमानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥ ३३ ॥

प्राण १ अपान २ समान ३ उदान ४ व्यान ५ नाग ६ कूर्म ७ कृकल ८ देवदत्त ९ धनंजय १० ये दश वायु शरीरमें हैं ॥ ३३ ॥

हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यतः ॥ ३४ ॥
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधानाः पञ्च वायवः ।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः॥३५॥

प्राणवायु हृदयमें रहकर श्वास बाहर भीतर निकालता तथा अन्नपानादिकोंका परिपाक करताहै १ अपानवायु मूलाधारमें मलमूत्र बाहर निकालनेका काम करताहै २ समानवायु नाभिमें शरको (शुष्क) अर्थात् यथास्थान रखनेका काम करताहै ३ उदानवायु कंठमें रहकर शरीरकी वृद्धि करताहै ४ व्यानवायु सर्वशरीरमें लेना, छोडनाआदि अंगधर्म कराताहै ५ वायु तो १० हैं परंतु इनमें प्रधान ये पांचहीं हैं शिवयोगशास्त्रके मतसे मुख. नासिका, हृदय, नाभिमें कुंडलिनीके चारों ओर तथा पादांगुष्ठमें सर्वदा प्राणवायु रहताहै १ गुह्य, लिंग, ऊरु, जानु, उदर, पेडू, कटि, नाभि इनमें अपानवायु रहताहै २ कर्ण, नेत्र, कंठ, नाक, मुख, कपोल, मणिबंधमें व्यानवायु रहताहै ३ सर्वसंधि तथा हात पैरोंमें उदानवायु रहताहै ४ उदराग्निके कलाको लेकर सर्वांगमें समानवायु रहताहै ५ इस कारणसे प्राणादि पांच वायु प्रधान हैं नागादि पांच वायुका कर्म जो चर्म एवं हड्डी रहकर करतेहै आगे कहतेहैं ॥३४॥३५॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकरः क्षुतकृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ ३६ ॥

उद्गार डकार निकालना नागवायुका कर्म है १ नेत्रोंके पलक

लगाना खोलना कूर्मवायुका तथा छिंका करना कृकरवायुका जूंभा देवदत्तवायुका कर्म है ॥ ३६ ॥

न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापिधनंजयः ।
एते सर्वासु नाडीषु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ॥ ३७ ॥

और धनंजयवायु सर्वशरीरमें व्याप्त रहताहै मृतशरीरमेंभी रहताहै अर्थात् मरेमेंभी चार घटीपर्यंत यह शरीरहीमें इसप्रकार ये दश वायु आपही जीवके अभ्याससे कल्पित होकर सुखदुःखका संबंध जीवको करातेहैं मैं सुखी हूं उत मैं दुखी हूं इत्यादि व्यवहारमय जीवकी उपाधि लिंगशरीरमें होनेसे आपही जीवरूप होकर समस्त नाडियोंमें फिरतारहताहै यद्यपि अविद्यावछिन्न चैतन्य जीवही है. तो इसका घूमना फिरना असंभव है तथापि जैसे चंद्रमा तो कंपायमान नहीहै परंतु उसका प्रतिबिंब जलमें जिससमय हो उससमय उस जलको हिलाया-जाय तो चंद्रबिंब हिलता दीखपडताहै ऐसेही व्यवहारसे दश वायुनका घूमना तथा इनहीकी उपाधि जीवचैतन्यमें आरोपित करतेहैं ॥ ३७ ॥

आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्छलति कन्दुकः ।
प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न तिष्ठति ॥ ३८ ॥

जैसे कंदुक (गेंद) हातसे भूमिपर ताडनकरके स्वतः उछलताहै. तैसेही प्राणवायुके स्थान (हृदय) में अपानवायु तथा अपानवायुके स्थान (गुदा) में प्राणवायुके प्राप्त होनेमें अपा-

नवायु जीवको आकर्षण करके एकत्र स्थित नहींरहनेदेता जै-
से गेंद खेलनेवालेके वशमें गेंद रहताहै ऐसेही अविद्या (माया)-
के वशमें जीव रहताहै ॥ ३८ ॥

प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावति ।
वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥ ३९ ॥

जीयकारणसे जीवात्मा प्राणअपानवायुके आधीन है उसी कारणसे इडा और पिंगला नाडीके द्वारा गिरके नीचे मूलाधारपर्यंत ऊपर मुख नासिकाछिद्रपर्यंत फिरताही रहताहै इसके अतिचंचल होनेसे इतना कठिन है कि प्राणापानवायुके साधनविना वायु नहीं जीताजाता इसके जीते विना हृदयकमलमें ध्यान नहींहोता ॥ ३९ ॥

रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः ।
गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कृष्यते ॥ ४० ॥

जैसे बाजपक्षिके पैरमें डोरी बांधके हिलावे कि छोडदेनेपर उडजाता एवं खींचनेपर फिर हातमें आयजाताहै ऐसेही मायाके अंश सत्त्वरजतमोगुणके वासनासे बँधाहुवा जीव बुद्धिकी लीनहुयेमें उपाधिरहित शुद्धब्रह्म होगयाहो तौभी प्राणापानवायुकरके फिर खींचाजाताहै जाग्रत्अवस्थामें फिर प्रबुद्धहुयेकी वृत्ति विषयमें पुनः जीवभावको प्राप्त कियाजाताहै ॥ ४० ॥

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोपानश्च कर्षति ।
ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ संयोजयति योगवित्॥ ४१॥

ऊपरसे आज्ञाचक्रगतप्राणवायु नीचे मूलाधारस्थित अपान-

वायुको तथा मूलाधारगत अपानवायु आज्ञाचक्रस्थप्राणवायुको परस्पर अपने २ ओर आकर्षण करतेहैं योगाभ्यासी पुरुष प्राणायामसे इनहींको जोडकर योग (जोडना) कहतेहैं इसी योग जोडनेको हठयोग कहतेहैं जो सूर्यचंद्रमा ऐक्य कहातेहैं ॥ ४१ ॥

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ ४२ ॥
षट् शतानि त्वहोरात्रे सहस्राण्येकविंशतिः ।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ ४३ ॥

प्राणवायु तादूप्यको प्राप्त होरहा चिदाभास जीव हकारकरके स्वाधिष्ठानचक्रसे उत्पन्न होताहै और सकारकरके मूलाधारादि चक्रमें प्रवेश करताहै एवंप्रकार ' हंस ' मंत्र (अजपागायत्री)का जप जीव नित्य करताही रहताहै अर्थात् श्वास बाहर निकलनेमें हकार भीतर प्रवेश होनेमें 'स' कार उच्चारण होताहै सूर्योदयसे पुनः सूर्यास्तपर्यंत ६० घटीमें इस मंत्रकी जपसंख्या २१६००होतीहै इतना जप जीव स्वतः करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥ ४५ ॥

यह योगियोंको मोक्ष देनेवाली अजपा नाम गायत्री है इ-

सके संकल्पमात्रसे योगी समस्तपापोंसे छूटजाताहै संकल्पकी विधि यह है कि सूर्योदयसे पहिलेही शयनसे उठकर शुद्धवस्त्र पहन हात, पैर, मुख प्रक्षालन कर शुद्धआसनमें बैठ आचमन करके संकल्पकल्पना इसप्रकार करना कि अद्येह पूर्वेद्युरहोरात्रचरितनासापुटनिःसृतोच्छ्वासनिःश्वासात्मकषट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकाजपागायत्रीजपं मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्धाज्ञाचक्रब्रह्मरन्ध्रस्थितेभ्यो गणपतिब्रह्मविष्णुरुद्रजीवगुरुपरमात्मभ्यः सिद्धिसरस्वतीलक्ष्मी गौरी प्राणशक्तिज्ञानशक्तिचिच्छक्तिसमेतेभ्यो यथासंख्यं षट्शतं, षट्सहस्रं, षट्सहस्रं, सहस्रमेकं, सहस्रमेकं, सहस्रमेकम् अजपागायत्रीजपं प्रत्येकं निवेदयामि इति निवेद्य। पुनरद्य प्रातःकालमारभ्य द्वितीयप्रातःकालपर्यन्तं नासापुटनिःसृतोच्छ्वासनिःश्वासात्मकं षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकमजपागायत्रीजपमहोरात्रेणाहं करिष्ये इति जायमानजपसंकल्पं कृत्वा स्वकृत्यमाचरेत् इस अजपाके समान जीवब्रह्मका अभेद कहनेवाला और कोई मंत्र नहींहै यह अल्पश्रममें उत्तम फल देनेवाला और जप नहीं. क्योंकि प्रातःकाल संकल्पमात्र करनाहै उपांत खाते पिते चलते उठते बैठते सोते सर्वदा सबअवस्थाओंमें उक्त जप आपसे होताही रहताहै और अद्वैतानुभव करानेवाला. उसके समान अन्य कोई ज्ञानशास्त्र पहिलेभी नहींथा और पीछे होनेवालाभी नहींहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्॥४६॥

कुंडलिनी महाशक्तिसे उत्पन्न होरही. तथा प्राणवायुको धारण करनेवाली यही अजपा गायत्री है. जीवात्माकी शक्ति प्राणविद्यास्वरूपभी यही है इसीकारण महाविद्याभी इसको कहतेहैं इसे जो योगी पहिचानसके वही योगशास्त्राभ्यासका तात्पर्य जानताहै ॥ ४६ ॥

॥ अथ शक्तिचालनम् ॥

कन्दोर्ध्वे कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥ ४७॥

अब कुंडलिनीके भेद खोलनेनिमित्त एवं उसकी अधिकता प्रकट करनेकेलिये कुंडलिनीका और प्रकारभी स्थान कहतेहैं कि समस्त ७२००० नाडीनका उत्पत्तिस्थान पूर्वोक्त कंद है इसके ऊपर मणिपूरचक्र कर्णिकामें आठ वृतकरके वेष्टित होरही कुंडलिनीशक्ति ब्रह्मरंध्रद्वारके मुखको रोकके सर्वदा रहतीहै ॥ ४७ ॥

येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् ।
मुखेनाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥ ४८ ॥
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह ।
सूचीव गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया ॥ ४९ ॥

जिस मार्ग (सुषुम्णा) करके जन्ममरणके दुःख हरण करनेवाला अखंड ब्रह्मानंदपद मिलताहै इस मार्गको रोकके सोई-

हुई कुंडलिनी प्राणवायुके धौंकने (उत्तेजन करने) से कालाग्निके ज्योतिके संबंधसे प्रबुद्ध (जाग्रत) होकर मन एवं प्राणवायुके सहित होके सुषुम्णानामा मध्यनाडीसे ऊपरको जातीहै जैसे सूची (सुई) अपनेपर पिरोये तागेसहित होनेसे वस्त्रके अनेक सूत्रोंके मध्यमें प्राप्त होतीहै. तैसे आपही सृष्टि उत्पन्न करके षट्चक्र तथा उनके देवताप्रभृति सकलप्रपंचको उल्लंघन करके ऊपर सहस्रदलकमलके सन्मुख होकर जातीहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

प्रसुप्तभुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा ।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया ॥ ५० ॥

सोते सर्पके समान कुंडलिनी अपानवायुसे धमित (धौंकागया) जो मूलाधारमें रहनेवाला कालाग्निज्योतिके संबंधसे प्रबोध पायके अतिवेग (जोर) से चलताहुवा सर्पके समान कुटिलगति होकर, कमलनालके तंतु (सूत्र) समान सूक्ष्म ज्योतिर्मयस्वरूपा होकर सुषुम्णामार्गसे ऊपरको जातीहै ॥ ५० ॥

उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात् ।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥ ५१ ॥

जैसें कुँची (चावी) से ताला खुलकर कपाट (केवाडे) खुलजातेहैं तसेही कुडलिनीकरके मोक्षद्वार सुषुम्णाके मुखको योगी अभ्याससे खोले जिससे कि कुंडलिनीके प्रबोधविना,

गाढं वक्षसि सन्निधाय चिबुकं ध्यानं च तच्चेतसि ॥
वारंवारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयेत्पूरितम् ।
मुञ्चन्प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावाद्दतः॥८२॥

दोनहूं हात (संपुटित) अंजली बांधके दोऊ (कर्पर) बाहुमध्यभाग हृदयमें दृढ स्थापन करके पद्मासन करे चिबुक (ठोडी) हृदयमें दृढतर लगायके अर्थात् जालंधरबंध करके ज्योतिःस्वरूपका ध्यान करे केवल कुंभकप्राणायाम अधोद्वार रोकके करे प्राणायामसे कुंभितवायुको अपानवायुसे एकत्व करके यथाशक्ति कुंभक करे पुनः रेचकप्राणायाम (जिसमें वायु अतिमंद २ निकस) करे इसप्रकारसे कुंडलिनीका बोध होताहै तथा योगीको अपारिमित ज्ञान मिलताहै. कुंडलिनीके प्रबोध करनेवाली शक्तिचालनमुद्रा यही होतीहै परंतु प्राणायामके अभ्याससे प्राणापानवायुको वशवर्ती करके इस मुद्राका बहुत कालपर्यंत अभ्यास करना होताहै ॥ ८२ ॥

अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमसञ्जातवारिणा ।
कट्वम्ललवणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् ॥ ८३ ॥
ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः ।
अब्दादूर्ध्वं भवेत्सिद्धो नात्र कार्य्या विचारणा॥८४॥

शक्तिचालनमुद्राके अभ्यासीके नियम कहतेहैं कि प्राणायामादिकर्मसे जो अंगोंमें स्वेद (पसीना) आताहै उसमें अंगमर्दन करे; लवण और खट्टा ये दो रस न खावे केवल दुग्धान्न खाया- करे भोजनभी एक प्रमाणसे करे ब्रह्मचर्य रक्खे कामक्रोधसे र-

हित रहै त्यागवान् होवै योगाभ्यासका मात्र अभ्यास रक्खे इसप्रकार नियममें रहकर योगाभ्याससे शक्तिचालनमुद्राके अभ्यास करे एकवर्ष ऊपर जब इच्छा करे तभी कुंडलिनीके अभ्युत्थानके सामर्थ्य होतीहै इसमें सिद्धि होतीहै वा नहीं ऐसा संदेह न करना अभ्याससे अवश्यमेव सिद्धि होतीहै ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥

सुस्निग्धो मधुराहारी चतुर्थांशविवर्जितः ।
भुञ्जते स्वरसं प्रीत्यै मिताहारी स उच्यते ॥५५॥

मिताहारके लक्षण कहतेहैं स्निग्ध (सचिक्कण) मीठा भोजन करे अम्ल (खट्टा) और लवणवर्जित करे दो भाग अन्न एक भाग जल खावै चौथा भाग उदरमें वायुसंचारकेलिये छोडदेय. देवताको निवेदन करके दुग्धान्न भोजन करै इसप्रकार विधि करनेहारा योगी मिताहारी कहाताहै ॥ ५५ ॥

कन्दोर्ध्वे कुण्डली शक्तिः शुभमोक्षप्रदायिनी ।
बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स वेदवित् ॥५६॥

कंदके ऊपर मणिपूरचक्रके कर्णिकामें ८ फेरे वेष्टित होकर कुंडलाकार कुंडलिनी शक्ति है यह मूर्खजनोंको वारवार जन्ममरणरूप बंधन देतीहै और योगाभ्यास जाननेवालेको शक्तिचालनका अभ्यास जन्ममरणरूप बंधन छुटायके मे देतीहै ॥

अथ शक्तिचालनविधौ ग्रन्थान्तरे विशेषः॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये बालरण्डा तपस्विनी।
बलात्कारेण गृह्णीयात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १ ॥

शक्तिचालनमें ग्रंथांतरमतसे कुछ विशेष कहतेहैं कि, गंगा-यमुनाके बीच तपस्विनी बालरंडा बलात्कारकरके कुंडलिनीको ग्रहण करे तो विष्णुके परमपद (ब्रह्मांड) में प्राप्त करतीहैं॥ १॥

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये बालरण्डा च कुण्डली ॥२॥

इडा भगवती वामश्वासा नाडी ऐश्वर्य्यादिसंपन्न गंगा, दक्षिणश्वासा पिंगलानाम्नी यमुना हे इनके मध्यनाडी सुषुम्णा बालरंडा है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं वितस्तिमात्रं तु विस्तारं चतुरङ्गुलम्।
श्वेतं तु मृदुलं प्रोक्तं वेष्टितं वरलक्षणम् ॥ ३ ॥

मूलस्थानसे वितस्तिमात्र ऊपर नाभि एवं मेढ्रके मध्यमें नवांगुल विस्तार, चार अंगुल आयाम, पक्षीके अंडाकार, श्वेतरंग, कोमल वस्त्रवेष्टित जैसा कंद है ॥ ३ ॥

सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्दृढम्।
गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् ॥ ४ ॥

वज्रासनकरके हाथोंसे पैरोंके एडी पकड कंदस्थानमें दृढ लगाय पीडन करे ॥ ४ ॥

वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम्।

कुर्यादनन्तरं भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत् ॥ ५ ॥

योगी वज्रासनमें बैठ कुडलीको शक्तिचालनमुद्रासे चलायमान करे तब भस्त्रा नाम कुंभक कर कुंडलिनीशक्तिको शीघ्र प्रबोधित करे ॥ ५ ॥

भानोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः ।
मृत्युवक्त्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः ॥ ६ ॥

नाभिस्थान (सूर्य) को आकुंचन कर कुडलीको चलावे इसका अभ्यास सिद्ध होजाय तो मृत्युके मुखमें पडगयाहो तौभी उसकी मृत्यु न होवे ॥ ६ ॥

मुहूर्त्तद्वयपर्यन्तं निर्भयं चालनादसौ ।
ऊर्ध्वमाकृष्यते किञ्चित्सुषुम्णायां समुद्गता ॥ ७ ॥

चार घडीपर्यंत निर्भय होकर शक्तिचालन करे तो कुडलिनी कछुक सुषुम्णामें ऊपरको ऊठतीहै ॥ ७ ॥

तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्णाया मुखं ध्रुवम् ।
जहाति तस्मात्प्राणोयं सुषुम्णां व्रजति स्वतः ॥८॥

इससे कुडलिनी (जो सुषुम्णा रोक बैठीहै) सुषुम्णाका द्वारको छोडदेतीहै तब प्राणवायु आपही सुषुम्णामें प्रवेशकरताहै ॥ ८ ॥

तस्मात्सञ्चालयेन्नित्यं सुखसुप्तामरुन्धतीम् ।
तस्याः सञ्चालनेनैव योगी रोगैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

इससे नित्यमेंनि सुषुम्णाद्वारमें सोती कुंडलिनीको चलाचकूटजावे ॥ ९ ॥

येन सञ्चालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम्।
किमत्र बहुनोक्तेन कालं जयति लीलया ॥ १० ॥

जिस योगीने शक्तिचालन किया वह अणिमादिसिद्धियोंका पात्र होताहै और विशेष माहात्म्य क्या कहाजाय वह काल (मृत्यु) को सहजही जीतलेताहै ॥ १० ॥

कुण्डलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः।
एवमभ्यस्यतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥११॥

जो यमी नित्य कुंडली चलायके भस्त्रा कुंभकका अभ्यास विशेषकरके करताहै तो उसको यमकी भय नहींहोती ॥ ११ ॥

इयं तु मध्यमा नाडी दृढाभ्यासेन योगिनाम्।
आसनप्राणसंयाममुद्राभिः सरला भवेत् ॥ १२ ॥

योगियोंको दृढाभ्याससे आसन प्राणायाम महामुद्रादि करके (मध्यनाडी) सुषुम्णा सरल होजातीहै ॥ १२ ॥

॥ अथ महामुद्रा ॥

महामुद्रां नभोमुद्रां उड्डीयानं जलंधरम्।
मूलबन्धश्च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनः ॥ ८७॥

महामुद्रा १ खेचरीमुद्रा २ उड्डीयानबंध ३ जालंधरबंध ४ मूलबंध ५ इनको करके शक्तिचालन करे तो योगी मुक्तिभाजन होताहै शक्ति चली या नहीं इसके जाननेका प्रमाण यह है कि जैसे शरीरमें पिपीलिका (चींटी) चलनेमें उसकी गतिसे ज्ञात होताहै कि कुछ जीव चलताहै. ऐसेही सुषुम्णामें वायु जब च-

लने लगताहे तो शक्ति चलायमान होगयी जानना शक्तिचालनमुद्राके पीछेभी उक्त ५ मुद्रा करनी योग्य है ॥ ५७ ॥

वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामाङ्घ्रिणा
हस्ताभ्यामनुधारयेत् प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम् ।
आपूर्य्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बद्ध्वा शनै रेचये-
देषा व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते५८

महामुद्राकी विधि कहतेहैं कि हृदयमें. चिबुक जोरसे धारणकरके वामपादके एडीसे योनिस्थानके अत्यंत दृढकरके अचेते दहिना पाद लंबा करके दोनहूं हाथोंसे पादमध्यभाग पकडके दृढ रोके. तब पेटमें पूरक विधिसे वायु भरे कुछ काल यथाशक्ति कुंभक करके मंद मंद वायुको रेचन करे. यह योगिजनको समस्त रोगनाशक महामुद्रा कहीहै ॥ ५८ ॥

चन्द्राङ्गेन समभ्यस्य सूर्याङ्गेनाभ्यसेत्पुनः ।
यावत्तुल्या भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत्॥५९॥

इस महामुद्राके अभ्यासमें प्रथम वामांगसे अभ्यास करके पीछे दाहिने अंगसे करे वैसेही प्राणायामभी करतारहे जब दोनहूं ओरके अभ्याससे प्राणायामकी मात्रा बराबर होजाय तब मुद्रा छोडनी तबतक उक्त अभ्यास करतारहना ॥ ५९ ॥

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेपि नीरसाः ।
अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते ॥ ६० ॥
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।
। यान्ति महामुद्रां च योभ्यसेत् ६१

कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम ।
गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित ॥६२॥

जब महामुद्राका अभ्यास दृढ होजाय तो, पथ्यापथ्यविचार कुछ नहींरहता. मिष्ठ, लवण, तिक्तआदियों स्वाद कुछ नहीं-रहता. जो (घृत, सहद बराबर मिलायके कृत्रिम विष होताहै) संयोगविरुद्धवस्तु, वा घोरविषभी खावे तो अमृतके समान प-चिजाताहै तथा उदावर्त, गुल्म, अजीर्ण, क्षय, कुष्ठ, आदि रोग समस्त शांत होजातेहैं. इसके अभ्यासीको महासिद्धि देनेंहारी यह महामुद्रा कहीहै इसे बडे यत्नसे गुप्त रखना प्रकाश करनेंसे सामर्थ्यहीन होतीहै इसहेतु अनधिकारी, अयोग्य पुरुष, शठ, दांभिकआदि जैसे कैसेको न देना ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

'इसका विस्तार ग्रंथांतरसे पाठकोंके सुबोधार्थ लिखतेहैं.'-

पादमूलेन वामेन योनिं संपीड्य दक्षिणम् ।
प्रसारितं पद कृत्वा कराभ्यां धारयेद्दृढम् ॥ १ ॥

वामपादके एडीसे गुदा और शिश्नके मध्यमें योनिस्थानको रोकके दाहिना पैर लंबा पृथ्वीमें फैलाय जैसे एडी भूमिमें रहै और अंगुली ऊंची दंडेकेसे नाई रहै. तब हातोंके अंगुष्ठ और तर्जनीसे दक्षिणपादांगुष्ठ पकडके धारणकरे ॥ १ ॥

कण्ठे बन्धं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः ।
यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते ॥ २ ॥

तदनंतर कंठमें जालंधरबंध करके वायुको ऊपर सुषुम्णामें

धारण करे इससे मूलबंधभी होजाताहै जहां योनिस्थानको पीडन और जिह्वाबंध करके मूलबंध होजाताहै ॥ २ ॥

ऋज्वीभूता तथा शक्तिः कुण्डली सहसा भवेत् ।
तदा सा मरणावस्था जायते द्विपुटाश्रया ॥ ३ ॥

जैसे सर्प दंडके प्रहारसे दंडाकार होजाताहै ऐसेही कुंडलिनी शक्तिभी कुटिलताको छोडकर इस मुद्रासे सरल होजातीहै और कुंडलिनीके बोधसे सुषुम्णामें वायुका प्रवेश होताहै तब दोनहूंको प्राणके वियोगसे इडा पिंगला हैं आश्रय जिसके ऐसी मरणावस्था होतीहै ॥ ३ ॥

ततः शनैः शनैरेव रेचयेन्नैव वेगतः ।
महामुद्रां च तेनैव वदन्ति विबुधोत्तमाः ॥ ४ ॥
इयं खलु महामुद्रा महासिद्धैः प्रदर्शिता ।
महाक्लेशादयो दोषाः क्षीयन्ते मरणादयः ॥ ५ ॥

तदनंतर शनैः शनैः रेचन करै वेगसे करनेमें बलहानि होतीहै इससे महामुद्राआदि नाथादि महासिद्धोंने दिखाईहै इसके अभ्याससे महाक्लेश, अविद्या, राग, द्वेषादिक, शोकमोहादिदोष क्षीण होतेहैं तथा जरामरणभी नहींहोते इससे ज्ञानिजन इसे महामुद्रा कहतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

महामुद्रां च तेनैव वदन्ति विबुधोत्तमाः ।
चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्याङ्गे पुनरभ्यसेत् ।
यावत्तुल्या भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥ ६ ॥

कि (चंद्रांग) वामभागमें अभ्यास

सूर्य्यांग (दक्षिणभाग) में अभ्यास करे और वामांगाभ्यासके पीछे जवलौं वामांगमें कुंभककी संख्या समान हो तवलौं अभ्यास करे जब संख्या समान हो तब महामुद्रा विसर्जन करे इसमें यह क्रम है कि वामपादके एडीको योनिस्थानमें लगाय दाहिना पाद लंबा फैलाय अंगुठको हातके अंगुठ तर्जनीसे पकडके अभ्यास करे यह वामांगाभ्यास है इससे पूरित जो वायु सो वामांगमें स्थित रहताहै फिर दक्षिणपादको समेटताकी एडी योनिमें लगाय वामपाद लंबा फैलाय अंगुठको हातके अंगुठ तर्जनीसे पकडके अभ्यास करे इसे दक्षिणांगाभ्यास कहतेहैं इससे पूरित वायु दक्षिणांगहीमें रहताहै ॥ ६ ॥

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेपि नीरसाः ।
अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते ॥ ७ ॥

गुण कहतेहैं कि महामुद्राके अभ्यासको पथ्यापथ्यविचार नहीं है कटु, अम्लादि समस्त रसादिक जो खाय वहीं पचजावै नीरस, बासी, पर्युषित सब पचे. तथा दुर्जर (घोर विष) आदि भी अमृतके नाईं पचजावे ॥ ७ ॥

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।
तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योभ्यसेत् ॥ ८ ॥

जो पुरुष महामुद्राका अभ्यास करे उसे क्षयरोग, कुष्ठ, गुल्मरोग, अजीर्ण, ज्वर, प्रमेह, उदररोगआदि कभी न होवें ॥ ८ ॥

कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम् ।
गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित् ॥ ९ ॥

और उस अभ्यासीको अणिमादि महासिद्धि देनेंहारी यह महामुद्रा कहीहे इसे गुप्त रखना अर्थात् अनधिकारीको न देना ॥ ९ ॥

॥ अथ खेचरीमुद्रा ॥

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ६३ ॥

खेचरीमुद्राकी,विधि कहतेहैं कि,जिह्वाको उलटे फिरायके कंठमूलमें जो छिद्र (लिगुलिग्या) याने क्षुद्रघंटिका है उसमें प्रवेश करना तदनंतर भ्रूमध्यमें निश्चल दृष्टि स्थिर करना इसे खेचरीमुद्रा कहतेहैं ॥ ६३ ॥

न रोगान्मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न मूर्च्छा तु भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥६४॥

जो योगी गुरूपदिष्ट मार्गकरके छेदन, दोहन, कर्षण, (ये-कर्म आगे कहेंगे) प्रकारसे खेचरीमुद्राको बहुतकालपर्यंत अभ्यास करताहे उसको रोग, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्छा और मरणतुल्य कष्ट दूर होतेहैं ॥ ६४ ॥

पीड्यते न च शोकेन न च लिप्यते कर्मणा।
बाध्यते न स केनापि यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥६५॥

जो योगी खेचरीमुद्रा जानके उन अभ्यास करिके सिद्धि करताहै वह शोकसे पीडित नहींहोता. कर्मके फलमें बंधन नहीं मृत्यु आदियोंसेभी बाधा नहींपाता ॥६५

चित्तं चलति नो यस्माज्जिह्वा चरति खेचरी ।
तेनेयं खेचरी सिद्धा सर्वसिद्धैर्नमस्कृता ॥ ६६ ॥

जिसकारण तहां परब्रह्मविषये एकाग्र होकर मन बुद्धि चित्त शून्यविषें फिरताहै तथा जिह्वाभी कंठमूल छिद्राकाशमें रहके ब्रह्मरंध्रांतर्गत चंद्रकलामृतका पान करतीहै इस हेतुसे मनबुद्धिके विषयबंधन निवारण करनेहारी खेचरी मुद्रा समस्त सिद्धजनोंसे अत्यंत पूजित (नमस्य) है ॥ ६६ ॥

बिन्दुमूलं शरीराणां शिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः ।
भावयन्ति शरीराणामापादतलमस्तकम् ॥ ६७ ॥

शरीरका मूल (कारण) बिंदु है इससे शरीरकी रक्षा है. पादसे शिरपर्यंत समस्त नाडीजाल बिंदुसे सेचन होरहीहैं इसी- हेतु उक्तनाडी सजीव स्वकर्मसामर्थ्य रहतीहैं अर्थात् समस्त नाडी बिंदुके आधारमें हैं ॥ ६७ ॥

खेचर्य्या मुद्रया येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः ।
न तस्य क्षरते बिन्दुः कामिन्यालिङ्गितस्य च ॥६८॥

जिस योगीने कंठनालके छिद्रलंबिकाके ऊपर आकाशविषें खेचरीमुद्रासे रोकलिया. तो चंद्रामृत रुकनेसे उस योगीको कामिनी (स्त्री) आलिंगन करे तौभी उसका मन चलायमान नहींहोता तथा बिंदु नहींगिरताहै ॥ ६८ ॥

यावद्बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्योर्भयं कुतः ।
यावद्बद्धा नभोमुद्रा तावद्बिन्दुर्न गच्छति ॥ ६९ ॥

जबलों देहमें बिंदु स्थिर है. तावत् मृत्युकी भय नहींहोती

बिंदुका स्थान व्योमचक्र है इससें कालकी गति नहींहै, जबलों खेचरीमुद्रा दृढ है तबलों बिंदु व्योमचक्रसे नहींगिरता. इसके स्वस्थानस्थ रहनेमें कालका वश नहींचलता ॥ ६९ ॥

चलितोपि यदा बिन्दुः संप्राप्तश्च हुताशनम् ।
व्रजत्यूर्ध्वं हृते शक्त्या निरुद्धो योनिमुद्रया ॥७०॥

कदाचित् एकाग्र न होनेसे बिंदु उतरके नाभिस्थान सूर्यमंडलमें पहुँचगया तो योनिमुद्राकरके कुंडलिनीशक्तिको ऊपर उठायके उसके आघातसे उक्त बिंदु पुनः ऊपर लौटके अपनेही स्थानमें प्राप्त होकर स्थिर रहताहै ॥ ७० ॥

स पुनर्द्विविधो बिन्दुः पाण्डुरो लोहितस्तथा ।
पाण्डुरः शुक्रमित्याहुर्लोहिताख्यो महारजः ॥७१॥

उक्त बिंदु दो प्रकारका होताहै एक तो पांडुरवर्ण जिसे शुक्र कहतेहैं दूसरा (लोहित) रक्तवर्ण इसे महारज कहतेहैं॥७१॥

सिन्दूरद्रवसंकाशं नाभिस्थाने स्थितं रजः ।
शशिस्थाने स्थितो बिन्दुस्तयोरैक्यं सुदुर्लभम् ७२

तैल मिलायके सिंदुर (हिंगुल) का द्रव (रस) के समान रज सूर्यस्थान नाभिमंडलमें रहताहै तथा बिंदु (वीर्य) चंद्रमाके स्थान कंठदेश षोडशारचक्रमें स्थिर रहताहै इन दोनहूंका ऐक्य (मेल) अत्यंत दुर्लभ है ॥ ७२ ॥

बिन्दुः शिवो रजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दू रजो रविः ।
अनयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥ ७३ ॥ बि- पा॰ है, इनके एकहोनेमें योगसिद्धि है ॥

परमपद मिलताहै चंद्रमा सूर्यका (प्राणवायु अपानवायुका जी-
वातमा परमात्माका) ऐक्य करना यही हठयोगपदका अर्थ है
॥ ७३ ॥

वायुना शक्तिचारेण प्रेरितं तु यदा रजः।
याति विन्दोः सहैकत्वं भवेद्दिव्यं वपुस्ततः ॥७४॥

शक्तिचालनविधिसे वायुकरके जब रज बिंदुके साथ ऐ-
क्यको प्राप्त होताहै तब शरीर दिव्य होजाताहै अर्थात् उसे
अग्नि जलातीनहीं शस्त्रसे कटतानहीं ॥ ७४ ॥

शुक्रं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्य्येण संयुतम्।
तयोः समरसैकत्वं यो जानाति [redacted] योगवित् ॥७५॥

शुक्र बिंदुरूप हो चंद्रमासे मिला और रज रक्तरूप होकर
सूर्य्यसे मिला इनका (समरसैकत्व) चंद्रसूर्य्यस्वरूप बिंदुरज-
का समरसत्वभावको जो योगी जानताहै वह योगवित् कहा-
ताहै चंद्रमा एवं सूर्यको योगको योग कहातेहैं ॥ ७५ ॥

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्य्ययोः।
रसानां शोपणश्चैव महामुद्राभिधीयते ॥ ७६ ॥

नाडीजालके शोधनसे, इनमें रहनेवाले वात-पित्त-कफादि
रोगोंका हरण होताहै. चंद्रसूर्यके चालनसे इनके एकत्र होनेमें
खाया अन्न, पिया जलका शोषण होताहै ऐसा महामुद्राका
फल है. अर्थात् इस मुद्राकरिके नाडिजालका शोधन चंद्रसूर्य-
चालन रसोंकाशोषण होताहै ॥ ७६ ॥

॥ ग्रन्थान्तरे खेचरीमुद्राविधिः ॥

छेदनचालनदोहैः कलां क्रमेण वर्द्धयेत्तावत् ।
यावद्भ्रूमध्यं तु स्पृशति तदा खेचरीसिद्धिः ॥ १ ॥

जिह्वा खेचरीयोग्य करनेकी विधि ग्रंथांतरसे कहतेहैं कि छेदन-चालन-दोहलकर्मसे जिह्वा बढतीहै, छेदन आगे कहेंगे, चालन यह है कि अंगुष्ठ और तर्जनीसे जिह्वाको हिलाते रहना, दोहन दोनहूं हाथोंके अंगुष्ठ तर्जनीसे जैसे गौके थनको दुहै ऐसे खींचखींचके जिह्वाको लंबी करे जबतक बाहर निकलकर भ्रुकुटीको स्पर्श करे तबतक ये विधि करतारहै ॥ १ ॥

स्नुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम् ।
समादाय ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत् ॥ २ ॥

छेदन कहतेहैं कि थूहरके पत्रके समान अति तीक्ष्ण, सचिक्कण निर्मल शस्त्रसे जिह्वाके नीचेकी नशको रोममात्र छेदनकरे ॥२॥

ततः सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रघर्षयेत् ।
पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिनेत् ॥ ३ ॥

तापीछे सेंधा, नीमक, हर्डका चूर्ण छेदितस्थानपर मले. परंतु योगीको लवणनिषेध है इसलिये लवणके स्थान खदिर (कत्था)-से कार्य्य करना योग्य है एसे सायंप्रातः सात दिन करके फिर पूर्वोक्त विधिसे रोममात्र काटे पुनः उक्त औषधी लगातारहै॥ ३॥

एवं क्रमेण षण्मासं नित्यं युक्तः समाचरेत् ।
षण्मासाद्रसनामूलशिरा बन्धः प्रणश्यति ॥ ४ ॥

ऐसे छः ... नित्य युक्तिसे करे तो जिह्वामूल

नाडी जो जिह्वाको कपालकुहरमें पौंछानेसे रोकतीहै वह सुखपूर्वक कटजातीहै ॥ ४ ॥

कलां पराङ्मुखीं कृत्वा त्रिपथे परियोजयेत् ।
सा भवेत् खेचरी मुद्रा व्योमचक्रं तदुच्यते ॥ ५ ॥

जिह्वाको तिर्छी करके तीनहूं नाडियोंका मार्ग जो कपालछेद्र इसमें योजित करै ये खेचरीमुद्रा है इसीको व्योमचक्रभी कहतेहैं ॥ ५ ॥

रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्द्धमपि तिष्ठति ।
विषैर्विमुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥ ६ ॥

तालूके ऊपर छिद्रमें जिह्वाप्रवेश करके एकघडीमात्र खेचरी मुद्रा स्थिर रहे तो योगी को सर्प विछूआदियोंका विष न लगे और बुढापा, रोग, मृत्युको जीते वलीपलित (जो बुढापेमें चर्मे ढीला होकर सलवटें पडतीहैं) न होवें ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।
मासार्द्धेन न संदेहो मृत्युं जयति योगवित् ॥७॥

तालूके ऊपर छिद्रके सन्मुख जिह्वा लगाय स्थिरकरके भ्रूमध्यगत चंद्रमासे निकसे अमृतका पान जो योगी करे वह १ पक्ष (१५) दिनमें मृत्युको निस्संदेह जीत लेताहै यह निश्चय है ॥ ७ ॥

नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरं यस्य योगिनः ।
तक्षकेणापि दष्टस्य विषं तस्य न सर्पति ॥ ८॥

और जिस योगीका शरीर नित्य उक्त चंद्रामृतकरके पू-

र्ण होजाय तो तक्षकनागभी उसे डसे तौभी विष न लगे, दुःख न होवै ॥ ८ ॥

इन्धनानि यथा वह्निस्तैलवर्तिं च दीपकः ।
तथा सोमकलापूर्णं देही देहं न मुञ्चति ॥ ९ ॥

जैसे अग्नि काठको एवं दीपक तेलसहित बत्तीको नहींछोडते तैसेही चंद्रामृतपूरित देहको जीव कदापि नहींछोडता॥९॥

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम् ।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः ॥ १० ॥

आचार्य कहतेहैं कि जो योगी नित्य गोमांस भक्षण एवं अमरवारुणी पान करे तो उसे हम उत्तमकुलमें उत्पन्न समझतेहैं अन्यथा कुयोगी, कुलनाशक हैं सत्कुलमें उत्पन्न हुयेभी तो उनका जन्म व्यर्थ है ॥ १० ॥

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि ।
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम् ॥ ११ ॥

इस गोमांसशब्दका अर्थ कहतेहैं कि गोशब्दकरके यहां जिह्वाका बोधक है जिह्वाको कपालछिद्रमें प्रवेश करनेको गोमांस भक्षण कहतेहैं. यह महापातकोंका नाश करताहै॥११॥

जिह्वाप्रवेशसंभूतवह्निनोत्पादितः खलु ।
चन्द्रात्स्रवति यः सारः स स्यादमरवारुणीम् ॥१२॥

अमरवारुणीका अर्थ है कि तालूके ऊपर छिद्रमें जिह्वाके प्रवेश उष्मा (गर्मी) से ... भीतर वामभागस्थित चंद्रामृत

द्रवित होकर जिह्वाग्रमें प्राप्त होताहै इसे अमरवारुणीपान कहतेहैं ॥ १२ ॥

चुम्बन्ती यदि लम्बिकाग्रमनिशं जिह्वा सरस्यन्दिनी
सक्षारा कटुकाम्लदुग्धसदृशी मध्वाज्यतुल्या तथा।
व्याधीनां हरणं जरान्तकरणं शस्त्रागमोदीरणं
तस्य स्यादमरत्वमष्टगुणितं सिद्धाङ्गनाकर्षणम्॥१३

जब पूर्वोक्तकर्मोंसे जिह्वा बढायके उक्त विधिसे चंद्रामृत पान करने लगताहै तो मुखमें लवणसहित मिरिचादि, चिंचाफलादि, दुग्ध, मधु, घृतके आदि स्वाद आपसे ज्ञात होतेहैं तब योगीको रोग तथा वृद्धावस्थाका नाश होताहै शत्रु (जो अपनेको काटने आया) का निवारण होताहै आठों सिद्धि मिलतीहैं देवभाव मिलताहै सिद्धांगनाओंके आकर्षणके सामर्थ्य होतीहै ॥ १३ ॥

मूर्ध्नः षोडशपत्रपद्मगलितं प्राणादवाप्तं हठा-
दूर्ध्वास्यो रसनां नियम्य विवरे शक्तिं परां चिन्तयन्।
उत्कल्लोलकलाजलं च विमलं धारामयं यः पिबे-
न्निर्व्याधिः स मृणालकोमलवपुर्योगी चिरं जीवति १४

जिह्वाको कपालछिद्रमें लगाय मुख विपरीतकरणीके तरह ऊंचाकर कुंडलिनीके ध्यानसहित प्राणायामसे भ्रुकुटीमध्य द्विदलकमलके नीचे कंठस्थ षोडशदलकमलमें हठयोगसे प्राप्त जो निर्मलधारामय तरंगसहित चंद्रामृतरस है इसे जो योगी पान करै उसको ज्वरादिरोग न होते तथा कमलके नालकासा कोमल शरीर होकर बहुतकालपर्यंत जीवे ॥ १४ ॥

यत्प्रालेयं प्रहितसुपिरं मेरुमूर्धान्तरस्थं
तस्मिन्तत्त्वं प्रवदति सुधीस्तन्मुखं निम्नगानाम्।
चन्द्रात्सारः स्रवति वपुषस्तेन मृत्युर्नराणां
तद्बध्नीयात्सुकरणमथो नान्यथा कार्यसिद्धिः ॥१५॥

मेरुपर्वतसदृश सबसे ऊंची सुषुम्णाके उपरीभागमें स्थित चंद्रामृतरूप जल जिसमें स्थितहै ऐसे छिद्रमें सत्त्वगुणात्मा बुद्धिकरके आत्मतत्त्व है. और गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, संज्ञक इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गांधारी, आदि नाडियोंका उक्तविवरमें मुख हैं इनके द्वारा चन्द्रमंडलादागत अमृत व्यर्थ चलेजानेसे शरीर जरामृत्युको प्राप्त होताहै इसलिये प्रथम कहआयेहैं कि सुकरण नाम खेचरीमुद्रा करके चंद्रामृत व्यर्थ स्रवित नहींहोनेसे मृत्यु नहींहोती. इस मुद्राके विना देहकी सिद्धि, लावण्य, बल, वज्रसमान दृढ शरीर, नहींहोते ॥ १५ ॥

सुपिरं ज्ञानजनकं पञ्चस्रोतःसमन्वितम्।
तिष्ठते खेचरीमुद्रा तस्मिन् शून्ये निरञ्जने ॥ १६ ॥

इडा १ पिंगला २ सुषुम्णा ३ गांधारी ४ हस्तिजिह्वा ५ इनका प्रवाह ऊपरको है सो इनके प्रवाहसंयुक्त आत्माको साक्षात् प्रकट रहनेवाला विवर है सो अविद्या एवं अविद्याके कार्य्य, शोक, मोहादि दूर होतेहैं जिसमें ऐसे विवरमें खेचरीमुद्रा स्थित होतीहै ॥ १६ ॥

एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्रा च खेचरी।
एको देवो निरालम्ब एकावस्था मनोन्मनी ॥१७॥

समस्त बीजोंमें मुख्य सृष्टिरूप एक प्रमाण यह है समस्तदे-
वताओंमें भगवान् मुख्य है तैसेही समस्त मुद्राओंमें खेचरी मुख्य
है ॥ १७ ॥

उड्डचानं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगम्।
उड्डीयानं तदेव स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ७७ ॥

जिसकारण उड्डियानबंधसे रुका प्राणवायु कहींभी विश्राम
न करके उडके जैसा सुषुम्णामें गति करताहै उसीकारण तहां मृ-
त्युरूपी गजके ऊपर सिंह जैसा यही बंध कहाताहै ॥ ७७ ॥

उदरात्पश्चिमे भागे अधो नाभेर्निगद्यते।
उड्डियानो ह्ययं बन्धस्तत्र बन्धो निगद्यते ॥ ७८ ॥

उड्डीयानबंधका स्थान कहतेहैं कि उदरसे पश्चिम और
नाभीसे नीचे इस बंधका स्थान योगी कहतेहैं इसलिये यह बंध
उसी स्थानमें करना योग्य है ॥ ७८ ॥

॥ ग्रन्थान्तरे ॥

उदरे पश्चिमं स्थानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत्।
उड्डीयानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ १ ॥

नाभीका ऊपरला तथा नीचला भाग उदरमें लगजाय ऐसे
पेटके पीछे खींचे इसे उड्डीयानबंध कहतेहैं मृत्युरूपी गजको
निवृत्त करनेकेलिये सिंहसमान है ॥ १ ॥

उड्डीयानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।
अभ्यसेत्सततं यस्तु वृद्धोपि तरुणायते ॥ २ ॥

हितोपदेशकर्ता गुरुकरके सहजस्वभाव कहागया ऐसे

बंधको निरंतर अभ्यास करे तो वृद्धभी तरुण होजावै ॥ २ ॥

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि स्थानं कुर्यात्प्रयत्नतः ।
षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः ॥ ३ ॥

नाभीउर्ध्वाध-भागोंको खींचकर पीठमें लगावै. ऐसे इस बंधको छः महिनापर्यंत निरंतर अभ्यास करे तो निस्संदेह मृत्युको जीते ॥ ३ ॥

सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानकः ।
उड्डियाने दृढे बन्धे मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥४॥

संपूर्ण बंधोंमें उड्डीयानबंध उत्तम है यह दृढ होजाय तो स्वभावसिद्ध मुक्ति होतीहै. इसके करनेसे पक्षियोंकेभी गतिकरेके सुषुम्णाद्वारा प्राण मस्तिष्कमें लेजानेसे समाधिमें मोक्ष होताहै यही स्वाभाविकी मुक्ति है ॥ ४ ॥

बध्नाति हि शिरोजालं नाधो याति नभोजलम् ।
ततो जालंधरो बन्धो कण्ठदुःखौघनाशनः ॥ ७९ ॥

जालंधरबंध कहतेहैं कि यह बंध कंठस्थानमें होताहै अनेक रोगोंको हरताहै शरीरस्थ नाडीजालका बंधन करताहै व्योमचक्रस्थ चंद्रकलामृतको कपालकुहरसे नीचे नहीं गिरनेदेता इसकारण वह जालंधरबंध कहाहै ॥ ७९ ॥

जालंधरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे ।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रकुप्यति ॥ ८० ॥

कंठका संकोचन करके प्राणवायुकी गतिको रोकना जा-

लंधर बंध है इससे चंद्रकलामृत गिरके सूर्यरूप अग्निमें नहीं प-
डता एवं वायु कदाचित् विरुद्ध नहींहोता ॥ ८० ॥

॥ ग्रन्थान्तरे ॥

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्।
बन्धो जालंधराख्योयं जरामृत्युविनाशकः ॥ १ ॥

ग्रंथांतरसे जालंधरबंध कहतेहैं कि कंठ नीचे नवाय हृदय-
के चार अंगुल अंतर ठोडी लगाय दृढ स्थापन करे यह जा-
लंधरबंध वृद्धावस्था तथा मृत्युनाशक है ॥ १ ॥

कण्ठसंकोचनेनैव द्वे नाड्यौ स्तम्भयेद्दृढम्।
मध्यचक्रमिदं ज्ञेयं षोडशाधारबन्धनम् ॥ २ ॥

दृढके संकोचनमात्र करके इडा पिंगला दोनहूं नाडी स्तंभित
होतीहैं, कंठस्थानमें जो विशुद्धनामा चक्र है वह अंगुष्ठादि ब्रह्म-
रंध्रांत षोडश आधारोंका मध्यम चक्र है इन १६ आधारोंका
वर्णन पूर्व १३ श्लोकके टीकामें करआयेहैं ॥ २ ॥

मूलस्थानं समाकुञ्च्य उड्डीयानं तु कारयेत्।
इडां च पिङ्गलां बद्ध्वा वाहयेत्पश्चिमे पथि ॥ ३ ॥

नाभिको पश्चिम तानरूप उड्डीयानबंध करे और कंठ न-
माय जालंधरबंधसे इडा पिंगला नाडीनको स्तंभन करे तदनंतर
पश्चिममार्ग सुषुम्णामें प्राणवायुको प्राप्तकरे ॥ ३ ॥

अनेनैव विधानेन प्रयाति पवनो लयम्।
ततो न जायते मृत्युर्जरारोगादिकं तथा ॥ ४ ॥

इस विधिसे वायुकी गति बंद होकर प्राणवायु स्थिर हो-

कर ब्रह्मरंध्रमें स्थित रहताहै. इसे प्राणलय कहतेहै इससे मृत्यु, जरा, रोग, देहकी त्रिपली, श्वेतरोगता, मूर्छा, आलस्यादिक, नहीं होतेहैं ॥ ४ ॥

बन्धत्रयमिदं श्रेष्टं महासिद्धैश्च सेवितम् ।
सर्वेषां हठतन्त्राणां साधनं योगिनो विदुः ॥ ५ ॥

मूलबंध १ उड्डीयानबंध २ जालंधरबंध ३ ये श्रेष्ठ हैं मत्स्येंद्रादि महासिद्ध वसिष्ठादिमुनि इन्हें सेवन करतेहै हठके उपायोंके सिद्धिको प्रगट करतेहैं इससे गोरक्षादि सिद्ध इन्हें जानतेहैं ॥ ५ ॥

यत्किंचित्स्रवते चन्द्रादमृतं दिव्यरूपिणः ।
तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः ॥ ६ ॥

तालूके मूलमें स्थित दिव्यरूप चंद्रमासे कछुक अमृत स्रवित होताहै उसे नाभिस्थित अग्निरूप सूर्य ग्रास करलेताहै तब देहको वृद्धावस्था होतीहै ॥ ६ ॥

तत्रास्तिकरणं दिव्यं सूर्यस्य मुखवञ्चनम् ।
गुरूपदेशतो ज्ञेयं न तु शास्त्रार्थकोटिभिः ॥ ७ ॥

इसप्रकरणमें उक्तसूर्यके मुखवंचना अर्थात् जिससे उक्त अमृत सूर्यके मुखमें न पडे यह युक्ति कहीहै तथा विपरीतकरणी मुद्राभी (जो आगे कहेगे) इसके उपयोगी है, ये सर्व गुरुमुखसे जानेजातेहैं विना गुरु कोटीसंख्याक शास्त्रके अर्थमेंभी नजानेजाते ॥ ७ ॥

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ।

अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो विधीयते ॥ ८१ ॥

अपानवायु ऊपर खींचके प्राणवायुसे योजित करना. पादकी एडीसे गुदा, एवं लिंगके मध्य योनिस्थानको दृढ अचेतके गुदद्वारको दृढ संकुचित करना जिससे अपानवायु बाहर न निकसे इसप्रकार मूलबंध होताहै ॥ ८१ ॥

अपानप्राणयोरैक्यात् क्षयो मूत्रपुरीषयोः ।
युवा भवति वृद्धोपि सततं मूलबन्धनात् ॥ ८२ ॥

अपान और प्राणवायुका ऐक्य कर जो निरंतर मूलबंधका अभ्यास करताहै उसके मलमूत्र क्षय होतेहै. और बूढाभी जवान् होजाताहै ॥ ८२ ॥

'गोरक्षसंहितामें दशमुद्राओंमेंसे महामुद्रा१ खेचरी २ उड्डीयान ३ जालंधरबंध ४ मूलबंध ५ मुख्य कहीहैं अन्य महाबंध १ महावेध २ विपरीतकरणीमुद्रा ३ वज्रोली ४ शक्तिचालन ५ ये पांच इसी शतकमें साधारणप्रकार पूर्वही कह आयेहैं तथापि विशेष प्रकटताकेलिये मैं उन्हें ग्रंथांतरमतसेभी लिखताहूं'—

॥ तत्र प्रथमं महाबन्धः ॥

पार्ष्णिवामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।
वामोरूपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा ॥ १ ॥

वामपादको एडीसे योनिस्थानको रोधके दक्षिणपाद उसके ऊपर स्थापन करे अर्थात् मूलबंधकरके ॥ १ ॥

पूरयित्वा ततो वायुं हृदये चिबुकं दृढम् ।
निष्पीड्य वायुमाकुञ्च्य मनोमध्ये नियोजयेत् ॥ २ ॥

तब जालंधरबंधकरके वायुको पूरकर मनको मध्यनाडी सुषुम्णामें प्रवृत्त करे ॥ २ ॥

धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदनिलं शनैः ।
सव्याङ्गे तु समभ्यस्य दक्षाङ्गे पुनरभ्यसेत् ॥ ३ ॥

यथाशक्ति कुंभक करके मंद २ रेचन करे ऐसेही वामांगमें अभ्यास करे दोनों अंगोंके अभ्यासकी संख्या समान करे॥३॥

अयं तु सर्वनाडीनामूर्ध्वं गतिनिरोधकः ।
अयं खलु महाबन्धो महासिद्धिप्रदायकः ॥ ४ ॥

यह समस्तनाडियोंकी ऊपरकी गतिरोधक महासिद्धिदायक महाबंध है ॥ ४ ॥

कालपाशमहाबन्धविमोचनविचक्षणः ।
त्रिवेणीसंगमं धत्ते केदारं प्रापयेन्मनः ॥ ५ ॥

मृत्युपाशको काटनेवाला है. इडा, पिंगला, सुषुम्णा तीनोंके संगम (त्रिवेणी) धारणकर मनको (केदार) भ्रुकुटीशिवस्थानमें प्राप्तकरे ॥ ५ ॥

रूपलावण्यसंपन्ना यथा स्त्री पुरुषं विना ।
महामुद्रामहाबन्धौ निष्फलौ वेधवर्जितौ ॥ ६ ॥

जैसे कांति, गुण, शोभायुक्त स्त्री पुरुषविना व्यर्थ है ऐसेही महावेधविना महामुद्रा और महाबंध निष्फल है इसलिये अब महावेध कहतेहैं ॥ ६ ॥

॥ अथ महावेधः ॥

महाबन्धस्थितो योगी कृत्वा पूरकमेकधीः ।
वायूनां गतिमावृत्य निवृत्तं कण्ठमुद्रया ॥ १ ॥

एकाग्रबुद्धि करके योगी महावेध इसप्रकार करे कि, नासापुटसे पूरक करके जालंधरबंधकर वायुकी ऊर्ध्वगतिको रोक कुंभक करे ॥ १ ॥

समहस्तयुगो भूमौ स्फिचौ संताडयेच्छनैः ।
पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः ॥ २ ॥

दोनहूं हाथोंके हथलीसमान पृथ्वीमें धरके पादकी एडी योनिस्थानमें दृढ लगाय हाथोंके सहारे पृथ्वीसे कुछेक शरीर उठावे (परन्तु जैसे मूलबंध मुद्रा न खुले) फिर मंद मंद पृथ्वीमें अपने शरीरासन स्फिचको ताडन करे इससे वायु इडा-पिंगला-को उल्लंघनकर सुषुम्णामें प्राप्त होताहै (इस मुद्रामें स्वानुभवसे तथा हरिगुरुआदिष्ट मार्गसे कहताहूं कि शरीर पृथ्वीसे उठायकर पृथ्वीमें ताडन करनेमें उक्त मुद्रा दृढ नहीं रहसकती यदि चलसे रक्खाभी तो मूलबंध बिगडजाताहै इससे सुगम तो पद्मासनसे यह कार्य्य सुखपूर्वक होताहै औरभी सुभीता यह है कि हाथोंके जोरसे शरीर उठानेमें मूलबंध सुगमताहासे होजाताहै॥२

सोमसूर्याग्निसंबन्धो जायते चामृताय वै ।
मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेचयेत् ॥ ३ ॥

इस विधिसे सूर्यचंद्रमा अध्यात्मका इडा पिंगला सुषुम्णाका संयोग मोक्षके हेतु हैं ऐसे होनेमें (मराहुवा जैसा)

स्था होतीहै तब नासिकापुटमें मंद २ रेचन करे ॥ ३ ॥

महावेधोयमभ्यासान्महासिद्धिप्रदायकः ।
वलीपलितवेपघ्नः सेव्यते साधकोत्तमैः ॥ ४ ॥

इस महावेधके अभ्यास करनेंसे अणिमादि अष्टसिद्धि मिलतीहैं (वली) बुढापेमें मुखपर सलवटें पडनी. (पलित) बाल श्वेत होने. (कंप) बुढापेमें शरीर कांपना ये उक्त अभ्यासीको नहींहोते ॥ ४ ॥

एतत्त्रयं महागुह्यं जरामृत्युविनाशनम् ।
वह्निवृद्धिकरं चैव ह्यणिमादिगुणप्रदम् ॥ ५ ॥

ये महामुद्रा, महाबंध, महावेध, गोप्य हैं बुढापे तथा मृत्युकों दूर करतेहैं जाठराग्निको बढातेहैं अष्ट सिद्धि देतेहैं ॥५॥

अष्टधा क्रियते चैव यामे यामे दिने दिने ।
पुण्यं संभारसंधायि पापौघभिदुरं सदा ।
सम्यक्शिक्षावतामेवं स्वल्पं प्रथमसाधनम् ॥ ६ ॥

आठों प्रहरमें ८ ही वार इनका अभ्यास करे ये ३ पुण्यराशिको बढातेहैं पापसमूहको वज्रके समान चूंकतेहैं शिक्षावान् पुरुषको इसप्रकार दिन २ प्रहर २ में थोडा २ करके अभ्यास करनायोग्य है ॥ ६ ॥

॥ अथ विपरीतकरणमुद्रा ॥

ऊर्ध्वं नाभेरधस्तालोरूर्ध्वं भानुरधः शशी ।
करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ १ ॥

अब विपरीतकरणी मुद्रा कहतेहैं कि, ऊपरको नाभि नीचे तालूकरके नाभिस्थ सूर्य ऊपरको भ्रुकुटिस्थ चंद्रमा नीचेको होजाताहै इससे चंद्रामृत सूर्य्यरूप अग्निमें नहीं पडनेपाता यह विपरीतकरणीमुद्रा है यहां ग्रंथकर्त्ताने उदाहरण कुछेक लिखकर लिखा गुरुलक्ष्यपर निर्भर छोडदिया. इसलिये मैं (भाषाकार) अपने अनुभव एवं हरिगुरूपदिष्टमार्गसे लिखताहूं कि, दोनहूं पैरोंसे पद्मासन बांधकर दोनहूं हाथ और शिर (चोटी) पृथ्वी लगाय,उक्त पद्मासनको ऊपर अंतरिक्षमें खडा करे अभ्यास हुएमें कभी तो उस पद्मासनको खोल पाँव आकाशमें लंबे करे कभी फेर वैसेहीमें पद्मासन करै हाथ और शिरके सहारे उलटा खडा रहे तब यह मुद्रा होगी अभ्याससे सुगम होजातीहै ॥१॥

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्द्धिनी ।
आहारो बहुलस्तस्य संपाद्यः साधकस्य च ॥ २ ॥

जो इस मुद्राका नित्य अभ्यास करताहै उसकी जठराग्नि बढतीहै. उस साधकको आहार बहुत (यथेच्छ) करनाचाहिये ॥ २ ॥

अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात् ।
अधःशिराश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने ॥ ३ ॥

इस मुद्राका अभ्यासी यदि भोजन अल्प करे तो जाठराग्नि प्रज्वलित होकर देहको फूकतीहै. अब क्रिया है कि पहिले दिन शिर पृथ्वीमें रखकर पैर ऊपरको क्षणमात्र करे ॥ ३ ॥

क्षणाच्च किंचिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने ।

वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्वं न दृश्यते ।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित् ॥४॥

फिर प्रतिदिन एक एक क्षण बढायके अभ्याससे साधे तो सिद्धि भयेमें वलीपलित छः महीनेंसे दूर होजातेहैं जो प्रतिदिन एक २ प्रहरपर्यंत इसका करताहै वह कालमृत्युको जीतताहै ४

॥ अथ वज्रोली ॥

स्वेच्छया वर्तमानोपि योगोक्तैर्नियमैर्विना ।
वज्रोलीं यो विजानाति स योगी सिद्धिभाजनम् ॥१॥

अब वज्रोलीमुद्रा कहतेहैं कि जो योगोक्त नियम नहीं जानताहुवाभी अपनी इच्छासे वज्रोलीको जाने वह अणिमा सिद्धि पाताहै ॥ १ ॥

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्य कस्यचित् ।
क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी ॥ २ ॥

इस मुद्रामें हरकिसीको दो वस्तु दुर्लभ हैं विशेषतः ये २ अवश्य चाहियें. वज्रोल्यर्थसंगमोत्तर दुग्धपान, एवं वशवर्त्तिनी स्त्री २ उपयोगी हैं ॥ २ ॥

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ।
पुरुषोप्यथवा नारी वज्रोली सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

संगमकरके मंद मंद क्षरितवीर्यको इंद्रियसंकोचनकरके ऊपर खेंचनेके अभ्यास सिद्ध हुयेमें वज्रोलीमुद्राकी सिद्धि प्राप्त होतीहैं ॥ ३ ॥

यन्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकन्दरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुसंचारकारणात् ॥ ४॥
इसकी पूर्वांगक्रिया कहेहैं कि चांदी वा कांचकी १४ अंगुल खोखरी शलाका सच्छिद्र करे जो१२ अंगुल सरल २ अंगुल तिरछी रहे उसे लिंगछिद्रमें प्रतिदिन२।२ अंगुल प्रवेश कर एक किनारेसे फूंककर वायु प्रवेश करते१ बारह दिनमें २४ अंगुल प्रवेश करे इससे इंद्रियमार्ग शुद्ध होताहै तब इस मार्गसे जलके आकर्षणका अभ्यास करे अभ्यास सिद्ध हुयेमें वीर्यका आकर्षण करे तो सिद्धि होतीहै. जिसको खेचरी एवं प्राणजय सिद्ध हों उसको वज्रोलीसिद्धि होतीहै ॥ ४ ॥

नारीभगे पतद्विन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं विन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥ ५ ॥
स्त्रीसंयोगमें जब विंदु (वीर्य) शरीरसे चलायमान होतभी उसे उक्ताभ्याससे ऊपरको खींचलेवे अथवा जब भगमें गिरपडे तब स्त्रीके रजसहित विंदुको आकर्षण कर ऊपरको चढायकर स्थापन करे ॥ ५ ॥

एवं संरक्षयेद्विन्दुं मृत्युं जयति योगवित्।
मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात् ॥ ६ ॥
याप्रकार जो विंदुकी रक्षा करताहै सो योगी मृत्युको जीतताहै विंदुके पतनसे मृत्यु उसकी रक्षासे अमरत्व होतेहैं इसलिये इस विधिसे विंदुको स्थापन करे ॥ ६ ॥

सुगन्धो योगिनो देहे जायते विन्दुधारणात्।

यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः ॥ ७ ॥

उक्त अभ्यासीके शरीरमें बिंदुधारणसे सुगंध प्रकट होतीहै और जबलौं देहमें बिंदु स्थित है तबलौं कालभय नहींहोती॥७॥

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं शुक्रायत्तं च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥

वीर्य चित्तके आधीन है. चित्तके चलायमान होनेसे वीर्य चलायमान और स्थिरतासे स्थिर होताहै एवं शुक्रके आधीन जीवित हैं. इसके स्थिरतासे जीवित स्थिर और चलायमान होनेसे मरण होताहै, इसलिये शुक्र और मनकी रक्षा करनी मुख्य है ॥ ८ ॥

ऋतुमत्या रजोप्येवं बीजं बिन्दुं च रक्षयेत् ।
मेढ्रेणाकर्षयेदूर्ध्वं सम्यगभ्यासयोगवित् ॥ ९ ॥

ऐसेही रजोवती स्त्रीके रजको बिंदुसहित आकर्षणके ऊपरकों खींचके स्थापन करे ऐसे वज्रोलीके अभ्यास करनेवाला योगवेत्ता होताहै ॥ ९ ॥

' एक प्रकारके भेद वज्रोलीके सहजोली, अमरोलीभी हैं अतः प्रथम सहजोली कहतेहैं'—

सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्या भेद एकतः ।
जले सुभस्म निक्षिप्य दग्धगोमयसंभवम् ॥ १ ॥

जो वज्रोलीके फल वही सहजोली, अमरोलीकेभी है इसलिये येभी उसीके भेद हैं. गोबरके (कंडे) गोपठे जलायके भस्म जलमें मिलावे ॥ १ ॥

वज्रोलीमैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसोः स्वाङ्गलेपनम्।
आसीनयोः सुखेनैव मुक्तव्यापारयोः क्षणात् ॥ २ ॥

वज्रोली अर्थ मैथुन करके क्षणमात्र सुखसे बैठके व्यवाय-व्यापार छोडके उक्त भस्म जलमें मिलाय स्त्रीपुरुष अपने २ सर्वांग लेपन करें ॥ २ ॥

सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभिः सदा।
अयं शुभकरो योगो भोगयुक्तोपि मुक्तिदः ॥ ३ ॥

यह मत्स्येंद्रादि योगीश्वरोंने सहजोली कहीहै यह योग शुभकारक है, अन्यत्र साधनाओंमें जहां भोग तहां मोक्ष नहीं जहां मोक्ष तहां भोग नहीं इस मुद्राके अभ्यासमें भोगसहित मोक्षभी है ॥ ३ ॥

अयं योगः पुण्यवतां धीराणां तत्त्वदर्शिनाम्।
निर्मत्सराणां सिद्ध्येत न तु मत्सरशालिनाम् ॥ ४ ॥

जो योगी पुण्यवान्, धैर्यवान्, तत्त्वदर्शी, और निर्मत्सरी हैं उनको सिद्ध होताहै जो मत्सरी (अन्यशुभद्वेषी) हैं उनको सफल नहींहोता ॥ ४ ॥

"अब दूसरा भेद व अमरोली कहतेहैं"—

पित्तोल्बणत्वात्प्रथमाम्बुधारां
विहाय निःसारतयान्त्यधाराम्।
निषेव्यते शीतलमध्यधारा
कापालिके खण्डमतेऽमरोली ॥ १ ॥

शिवांबुके प्रथमधारा पित्तके उष्णतासे तथा अंत्यधारा निःसारतासे त्यागकर निर्विकार मध्यधाराको ग्रहण कर सेवन करतेहैं यह योगाभिमत कापालिकी किया है इसे अमरोली कहतेहै यद्वा (कापालिक) कनफटे जोगियोंका (जिसे खंडमत कहतेहैं) यह कर्म विशेषतः इष्ट हैं ॥ १ ॥

अमरीयं पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन् दिने दिने ।
वज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगमरोलीति कथ्यते ॥ २ ॥

जो पुरुष अमरवारुणी (जो खेचरी प्रकरणमें कहीहै.) का पान करतेहैं एवं नाशभी अमरवारुणीका लेतेहैं तथा प्रतिदिन वज्रोलीका अभ्यास करें सोही कापालिकी अमरोली कहीहै। २।

अभ्यासान्निःसृता चान्द्री विभूत्या सह मिश्रयेत् ।
धारयेदुत्तमाङ्गेषु दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ३ ॥

अमरोलीके अभ्याससे निःसृत चंद्रसुधाको पूर्वोक्त भस्ममें मिलायके उत्तमअंग,—मस्तक, नेत्र, स्कंध, हृदय, भुजादिमें धारणकरे तो भूत, भविष्य, वर्त्तमान देखनेयोग्य दिव्यदृष्टि होजातीहै ॥ ३ ॥

॥ अथ स्त्रीणां वज्रोली ॥

पुंसो बिन्दुं समाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाटवात् ।
यदि नारी रजो रक्षेद्वज्रोल्या सापि योगिनी ॥ १ ॥

अब स्त्रियोंको वज्रोलीसाधन कहतेहैं कि, जो स्त्री अभ्यासकी चतुराईसे पुरुषके बिंदुको खींचके अपने रजकी वज्रोलीमुद्रा करके रक्षा करे वहभी योगिनी कहातीहै ॥ १ ॥

तस्याः किंचिद्रजो नाशं न गच्छति न संशयः ।
तस्याः शरीरे नादश्च बिन्दुतामेव गच्छति ॥ २ ॥

उसके रजका नाश (पतन) निस्संदेह अल्पभी नहींहोता तथा शरीरमें नादभी उत्पन्न होताहै चंद्ररूप बिंदु सूर्यरूप रजके बाहर संयोगसे सृष्टि (गर्भ) होतीहै जब अभ्याससे भीतरही योग होय तो योगसिद्धि होतीहै परमपद मिलताहै इनके संयोगमें समस्त देवता स्थित रहतेहैं ॥ २ ॥

स बिन्दुस्तद्रजश्चैव एकीभूय स्वदेहगौ ।
वज्रोल्यभ्यासयोगेन सर्वसिद्धिं प्रयच्छतः ॥ ३ ॥

रज, बिंदु वज्रोलीके अभ्याससे देहमें प्राप्त होनेपर सर्व सिद्धि देतेहैं ॥ ३ ॥

रक्षेदाकुञ्चनादूर्ध्वं या रजः साहि योगिनी ।
अतीतानागतं वेत्ति खेचरी च भवेद्ध्रुवम् ॥ ४ ॥

जो स्त्री भगको आकुंचन करते करते रजको ऊपर शरीरमें चढाय रक्षा करे वह योगिनी होतीहै भूत, भविष्य, वर्तमान जाने अंतरिक्षमें विच रहनेहारी वैमानिकगति मिलतीहै ॥ ४ ॥

देहसिद्धिं च लभते वज्रोल्यभ्यासयोगतः ।
[1]अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेपि मुक्तिदः ॥ ५ ॥

वज्रोलीके अभ्यासयोगसे (देहसिद्धि) रूप, लावण्य, बल, वज्रसंहननभाव मिलतेहैं. यह योग पुण्य देनेवाला तथा विषयभोग भोगनेमेंभी मुक्ति देताहै ॥ ५ ॥

[1] इनमें दशमशक्तिचालनमुद्रा प्रथम अजपा गायत्रीके उपरांत

कह आयेहैं. अब इन १० का माहात्म्य कहतेहैं—

इति मुद्रा दश प्रोक्ता आदिनाथेन शम्भुना ।
एकैका तासु यमिनां महासिद्धिप्रदायिनी ॥ १ ॥

ये दश (१०) मुद्रा आदिनाथ (शिव) ने कहीहैं इनमें एक एक मुद्रा योगीको अणिमादि देनेवारी हैं ॥ १ ॥

उपदेशं हि मुद्राणां यो दत्ते सांप्रदायिकम् ।
स एव श्रीगुरुस्स्वामी साक्षादीश्वर एव सः ॥ २ ॥

जो योगियोंको (सांप्रदायिक) गुरुपरंपराप्राप्त इन मुद्राओंका उपदेश देवै वही सर्व गुरुनते श्रेष्ठ, स्वामी, साक्षात् ईश्वर हैं ॥ २ ॥

तस्य वाक्यपरो भूत्वा मुद्राभ्यासे समाहितः ।
अणिमादिगुणैः सार्द्धं लभते कालवञ्चनम् ॥ ३ ॥

इनके उपदेशकर्त्ता गुरुके आसन, कुंभक, आहार, विहार, चेष्टादि वाक्योंमें आदरपूर्वक ग्रहणकर तत्पर रहै तो अणिमादि सिद्धियोंको जीतकर कालमृत्युको जीते ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रणवाभ्यासः ॥

पद्मासनं समारुह्य समकायशिरोधरः ।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम् ॥ ८३ ॥

अब प्रणवके अभ्यासकी विधि कहतेहैं कि एकांत स्थलमें बैठकर दृढ पद्मासन बांधके शरीर कंठ शिर सम (सरल) करके नासाग्रदृष्टि निरंतर करके प्रणव जप करे ॥ ८३ ॥

भूर्भुवःस्वरिमे लोकाः सोमसूर्य्योग्निदेवताः ।
यस्य मात्रासु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति॥८४॥
जिस प्रणवके अकार उकार मकार तीन वर्णमें भुः १ भुवः २ स्वः ३ ये लोक चंद्रमा १ सूर्य २ अग्नि३ देवता रहतेहैं वह प्रणव परमकारणरूप ज्योतिर्मय चैतन्य ॐ काररवरूप है ॥ ८४ ॥

त्रयः कालास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयः स्वराः ।
त्रयो देवाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥८५॥
जिस प्रणवमें भूत, वर्त्तमान, भविष्य ३ काल ऋक्, यजुः, साम तीनहूं वेद. स्वर्ग, मृत्यु, पातल ३ लोक उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ३ स्वर. ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीन देवता रहतेहैं. वह प्रणव (ॐकार) स्वरूप परब्रह्म ज्योतिस्वरूप है ॥ ८५ ॥

क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी ।
त्रिधा शक्तिः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥८६॥
जिस प्रणवके अ, उ, म, तीन मात्रा ॐक्रिया, इच्छा, ज्ञान, शक्ति भेदोंकरके ब्रह्माणी, रुद्राणी, वैष्णवी, ये शक्ति रहतीहैं सो प्रणव ओंकारस्वरूप परब्रह्मज्योति है ॥८६ ॥

अकारश्च उकारश्च मकारो विन्दुसंज्ञकः ।
त्रिधा मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥८७॥
त्रिलोकात्मा अकार उकार और विंदुस्वरूप मकार तीनहूं मात्रा रहतीहैं जिसमें ऐसा ब्रह्मजोतिस्वरूप प्रणव है ॥ ८७ ॥

वचसा तज्जपेद्वीजं वपुषा तत्समभ्यसेत् ।

मनसा तत्स्मरेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति ॥८८॥

इस प्रणवको सकल जगत्कारण भूतभावना करके वचनसे जप करना शरीरसे सिद्धासनादिसे सगुणब्रह्मकी भावना करके प्रणवार्थ समझ अभ्यास करना तथा मनसे परब्रह्मस्वरूप प्रकाश चैतन्य समझके सर्वदा स्मरण करना ॥ ८८ ॥

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि योजयेत्प्रणवं सदा ।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ८९ ॥

जो योगी बाह्याभ्यंतर शौचयुक्त वा बाह्यशौचमात्र यद्वा जैसे तैसे होकर प्रणवको अर्थ समझ अभ्याससे जप करताहै उसको शारीरकपाप स्पर्श नहींकरते. जैसे कमलदल जलमें रहताहै परंतु जल उसके पत्रको स्पर्श नहीं करसक्ता ऐसेही उक्त विधिका प्रणवाभ्यासीभी निर्लेप रहताहै ॥ ८९ ॥

॥ अथ प्राणायामप्रकारः ॥

चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत् ।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥९०॥

प्राणवायुके निश्वासोच्छ्वास होतेरहतेमें बिंदुभी चलायमान होताहै जो प्राणवायु स्थिर होगया तो बिंदु स्थिर होजाता है जब प्राणायामसे प्राण वायु स्थिर होगया तो योगी चिरकाल योगाभ्याससे समर्थ होताहै दीर्घजीवी तथा ईश (शिव) भावको प्राप्त होजाताहै. इसलिये योगीको वायुनिरोध करना मुख्य है ॥ ९० ॥

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवं न मुञ्चति ।

मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्॥९१॥
जबलों शरीरमें वायु स्थिर रहताहै तबलों जीव शरीरको नहीं-छोडता जब प्राणवायु शरीरसे निकल जाताहै तो उसी अवस्थाको मरण कहतेहैं जीवन मरण प्राण वायुके आधीन है इस लिये प्राणवायुका रोधन अवश्य विधिसे करनाचाहिये ॥९१॥

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निरामयम् ।
यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः ॥ ९२ ॥
जबतक प्राणवायु कुंभकसे देहमें स्थिर है तथा जबतक चित्त विषयवासना त्याग अंतःकरण ईश्वराकार निर्विकार है और जबतक भ्रूमध्यमें दृष्टि निश्चल है तबतक कालकी भय नहींहोती ॥ ९२ ॥

अतः कालभयाद्ब्रह्मा प्राणायामपरायणः ।
योगिनो मुनयश्चैव ततो वायुं निरोधयेत् ॥ ९३ ॥
जिसकारण जीवनमरण प्राणवायुके आधीन है इसी हेतु ब्रह्मा एवं सनकादिक सिद्ध, दत्तात्रेयादि मुनि, प्राणायामके साधनमें तत्पर हैं अन्य योगियोंकोभी इस अभ्याससे कालकी भय नहींहोती इस हेतु प्राणायाम साधन करना योग्य है॥ ९३ ॥

षट्त्रिंशदङ्गुलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः ।
वामे दक्षिणमार्गेण ततः प्राणोऽभिधीयते ॥९४॥
प्राणवायु अपानवायुरूप हंस इडापिंगलाके मार्गसे (३६)छत्तीस अंगुल बाहर निकलताहै इसहेतु 'बहिः प्रयाणं कुरुते प्राणः' उक्तवायु प्राण कहाताहै प्राणापानवायुरूप हंस है और नहीं ९४

शुद्धिमेति यदा सर्वनाडीचक्रं मलाकुलम् ।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥ ९५ ॥

जब शरीरके मलसे व्याप्त नाडीजाल, नाडीशोधन प्राणायामके प्रभावसे शोधके शुद्ध निर्मल होताहै तब योगाभ्यासोपयोगिप्राणवायुको थामनेकी सामर्थ्य योगीको होतीहै अन्यथा नहीं ॥ ९५ ॥

॥ अथ नाडीशोधनप्राणायामविधिः ॥

बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्य्येण रेचयेत् ॥ ९६ ॥

नाडीशोधन करनेवाले प्राणायामकी विधि कहतेहैं कि एकांतमें स्थूल और कोमल आसनमें बैठकर पद्मासन बांधे तब (चंद्रनाडी) इडासे १२ संख्या प्रणव जप करते मंद मंद पूरक तथा १६ संख्यासे दोनहूं ओर थामके कुंभकमें चंद्रमंडलका ध्यान करना और १० संख्यासे (सूर्यनाडी) पिंगलासे मंद मंद रेचन करे यह चंद्रांग (वामांग) प्राणायाम है ९६

अमृतदधिसंकाशं गोक्षीरधवलोपमम् ।
ध्यात्वा चन्द्रमसो बिम्बं प्राणायामी सुखी भवेत् ९७

चंद्रांगप्राणायाममें दधि, दुग्ध समान अतिशुक्लवर्ण अमृतस्वरूप चंद्रमाका कंठ तथा नाभिमें ध्यान करनेसे आनंदका अनुभव होकर सुख मिलताहै ॥ ९७ ॥

दक्षिणे श्वासमाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ।
कुम्भयित्वा विधानेन पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ ९८ ॥

(सूर्यनाडी) पिंगलामार्गसे प्राणवायु १२ संख्यासे प्रणवजपसहित पूरक १६ संख्यासे कुंभकमें आदित्यमंडलका ध्यान करना और १० संख्यासे प्रणवजप करके चंद्रनाडी इडामार्गसे मंद २ रेचन करना यह दक्षिणांग (सूर्यांग) प्राणायाम है॥ ९८ ॥

प्रज्वलज्ज्वलनज्वालापुञ्जमादित्यमण्डलम्।
ध्यात्वा नाभिस्थितं योगी प्राणायामी सुखी भवेत् ९९

सूर्य्यांग प्राणायाममें कुंभकविषये जाज्वल्यमान अग्निज्वालासमुदायसमान अग्निमय सूर्य्यमंडलको अपने नाभिकमलमें ध्यानकरके जो योगी प्राणायाम करे तो आनंद पाताहै॥९९॥

प्राणांश्चेदिडयापि चेत्परिमितं भूयोन्यया रेचयेत्
पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्धा त्यजेद्वामया।
सूर्य्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिम्बद्वयं ध्यायतां
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः॥
॥ १०० ॥

उक्त ४ श्लोकका अर्थ सूक्ष्मसे पुनः कहतेहैं कि यदि प्राणवायुको वामनासापुटसे १२ प्रणव जपसे पूरक १६ जपसे चंद्रमंडल ध्यानसहित कुंभक और १० जपसे रेचन सूर्यनाडीसे करना यह एक (१) प्राणायाम हुवा पुनः दक्षिणनाडीसे १२ जपि पूरक १६ से सूर्यमंडल ध्यानसहित कुंभक और १० से रेचन करना दूसरा प्राणायाम हुवा. पुनः वांमसे पूरक दक्षिणसे रेचक करके तीसरा प्राणायाम,

इसीप्रकार चंद्रांग पूरकके कुंभकमें चंद्रबिंब प्राणवायुस्वरूपका और सूर्य्यांग पूरकके कुंभकमें सूर्य्यबिंब अपानवायुस्वरूपका ध्यान करनेवाले योगीके समस्त नाडीजाल तीन (३) महीने उपरांत शुद्ध (निर्मल) होतेहैं यह नाडीशोधनका उत्तम प्रकार कहाहै जो संयमसे रहके धौती १ नेति २ नौली ३ बस्ती ४ त्राटक ५ भस्रा ६ पट्कर्ममें परिश्रम न करे तौभी इनही प्राणायामोंके अभ्याससे उनका उक्तकृत्य संपादित होजाताहै जैसे कहाभी है कि "प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति। आचार्य्याणां तु केषांचिदन्यत्कर्म न संमतम्" अर्थात् प्राणायामहीसे नाडीमल शुद्ध होजाताहै इसलिये याज्ञवल्क्यादियोंके अन्य धौत्यादि षट्कर्म संमत नहींहै ॥ १०० ॥

॥ ग्रन्थान्तरे ॥

प्रातर्मध्यंदिनं सायमर्द्धरात्रे च कुम्भकान् ।
शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ १ ॥

अरुणोदय सूर्योदयपर्यंत ३ घटी प्रातःकाल दिनके पांच विभाग कर मध्यभाग मध्याह्न, सूर्यास्तसे ३ घटी आगे पीछे 'सायं' संध्याकाल और अर्द्धरात्रिमें २ मुहूर्त्त निशीथ काल होताहै इन चारोंमें प्रत्येकमें ८०।८० प्राणायाम करना अर्द्धरात्रिमें न करसके. तीनों कालमें अवश्य अभ्यास करना. चारों समयके ३२० और ३ समयके २४० प्राणायाम होतेहैं ॥ १ ॥

कनीयसि भवेत् स्वेदः कम्पो भवति मध्यमे ।
उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निबन्धयेत ॥ २ ॥

जिसमें प्रस्वेद आवै वह कनिष्ठ, जिसमें कंप हो वह मध्यम है, जिसमें वायु ब्रह्मरंध्रमें प्राप्त हो सो उत्तम कहाताहै इससे योगी निरंतर वायुका अभ्यास करे और कुछ कम ४२ विपल कुंभक रहै सो कनिष्ठ ८४ से मध्यम, १२५ में उत्तम प्राणायाम काल कहतेहैं जब प्राणायाम स्थिर होजाय तब प्राण ब्रह्मरंध्रको प्राप्त होताहै तहां १२५ विपला स्थिररहै तब प्रत्याहार २५ पलापर्यंत रहै तो धारणा तथा ६ घटी रहै तो ध्यान और बारह (१२) दिन रहै तो समाधि होतीहै ॥ २ ॥

जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत् ।
दृढता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते ॥ ३ ॥

प्राणायामश्रमसे जो पसीना आवे उसे सर्वांगमें खूब मले इससे गात्र लघु और दृढ होतेहैं अर्थात् जडताका अभाव होताहै ॥ ३ ॥

अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ।
ततोभ्यासे दृढीभूते न तादृङ्नियमग्रहः ॥ ४ ॥

अभ्यासकालमें दूध, घृत भोजन करे जब केवल कुंभकाभ्यास दृढ होजाय तब उक्तनियमका कुछ आग्रह नहीं॥४॥

यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तथा चिह्नानि वाह्यतः ।
कायस्य कृशता कान्तिस्तदा जायेत निश्चितम् ॥५

जब नाडीशुद्धि होजातीहै तो वा बाहर चिह्न देहकी कृशता, कांतिवर्द्धनआदि निश्चय देखनेमें आतेहैं बहुतकालस-

में कुंभक धारण करनेंसे जाठराग्निप्रदीप्ति, नादकी प्रकटता और निरोगिता होतीहै ये सर्व नाडीशुद्धिके गुण हैं ॥ ५ ॥

यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् ।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधने ॥१०१॥

इति गोरक्षशास्त्रे प्रथमशतकम् ॥ १ ॥

नाडिशोधन हुयेमें अपने समझेयोग्य मंत्र-जप कालपर्यंत प्राणवायुके धारणसामर्थ्य होतीहै उदराग्नि प्रदीप्त स्पष्टतर नादका श्रवण और नैरुज्यता होतीहै ॥ १०१ ॥

इति महीधरकृतायां गोरक्षयोगशास्त्रभाषाया ससंग्रहायां योगाङ्गपूर्वाभ्यासविधिः ॥ १ ॥

घनमें अत्यंत कष्टसेभी अभ्यास दृढ नहींहोता इसलिये उनको प्रथम षट्कर्म करके तब प्राणायामका अभ्यास करना योग्य है इसलिये षट्कर्मविधि कहतेहैं.

॥ तत्रादौ धौतिः ॥

चतुरङ्गुलविस्तारं हस्तपञ्चदशायतम् ॥
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥ १ ॥

चार अंगुल चौडी, पंद्रह अंगुल लंबी, बारीक वस्त्र (पगडी) की पट्टी थोडे गरमजलमें भिगाय मुखसे पहिले दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तीसरे दिन तीन एवं क्रमसे १५ दिनमें पूरी गुरूपदिष्टमार्गसे (ग्रास) निघलजावे ॥ १ ॥

पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत् ।
कासश्वासप्लीहकुष्टं कफरोगाश्च विंशतिः ।
धौतिकर्मप्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः॥ २ ॥

उक्त वस्त्र पिछला किनारा मुखमें दांतोंसे दाब ओठोंसे लगाय नौलीकर्म करे इससे छातीमें लगा वस्त्र (उदर) अंतडिमें पहुँच साफ कर्ताहै तब थोडा २ बाहर निकालडाले यह धौतिकर्म है कास, श्वास, प्लीहा, कुष्ठादि विषरोग, बीस प्रकारके कफरोग इस धौतिकर्मके प्रभावसे निस्संदेह नाश होजातेहैं॥२॥

॥ अथ बस्तिः ॥

नाभि दघ्ने जले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधाराकुञ्चनं कुर्यात्क्षालनं बस्तिकर्म तत् ॥ १ ॥

अब वस्तिकर्म कहतेहैं कि नाभिमात्र जलमें उत्कटासन बैठकर छः अंगुल लंबी और अंगुल प्रवेशयोग्य छिद्रवाली बांसकी नली चार अंगुल गुदामें प्रवेशकर गुदा आकुंचन करके पेटमें जल चढाय नौलीकर्म करके बाहर छोडदेवै यह वस्तिकर्म है. धौती वस्ति विना भोजन कियेकरने न चाहिये तथा इनके उपरांत शीघ्र भोजन करना योग्य है ॥ १ ॥

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः ।
वस्तिकर्मप्रभावेण क्षीयन्ते सकलामयाः ॥ २ ॥

वस्तिकर्मसे गुल्म, प्लीह, जलोदर, वात, पित्त, कफसे उत्पन्न सर्वरोग नाश होतेहै ॥ २ ॥

धात्विन्द्रियान्तःकरणप्रसादं
दद्याच्च कान्ति दहन प्रदीप्तिम् ।
अशेषदोपोपचयं निहन्या
दभ्यस्यमानं जलवस्तिकर्म ॥ ३ ॥

जलमें वस्तिकर्मके अभ्याससे शरीरके सप्त धातु रस १ रुधिर २ मांस ३ मेद ४ अस्थि ५ मज्जा ६ शुक्र ७ तथा पांच ज्ञानेंद्रिय पांच कर्मेंद्रिय और अंतःकरणः, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ताप, विक्षेप, शोकादि, मोह, गौरव, आवरण, दीनता, राजसतामसका धर्म सभी निवृत्त होतेहैं. प्रसन्नता कांति बढतीहै. जठराग्नि दीप्त होतीहै. वातादिसमस्त दोषोंका नीरोगिता होतीहै ॥ ३ ॥

॥ अथ नेतिः ॥

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥ १ ॥

अब नेतिकर्म कहतेहैं कि एक बालिस्त मुलायम, एवं ग्रंथिरहित सूत्रका एक किनारा नासिकाके एक पुटमें प्रवेश कर दूसरे पुटको बंदकर पूरक करे जब कुछ सूत्र ऊपर चढे तब मुखश्वास छोडकर सूत्र बाहर निकाले तब एक नारा मुखके बाहर दूसरा नासिकाके बाहर दोनहूंको हाथोंसे पकड शनैः शनैः चलातारहै इसे नेतिकर्म सिद्धजन कहतेहैं ॥ १ ॥

कपोलशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी ।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च ॥ २ ॥

यह क्रिया कपोल तथा नासिकादियोंके मल दूर कर सूक्ष्मपदार्थदर्शी दिव्यदृष्टि देतीहै और (जत्रू) कंठमूल स्थानसे ऊपरके समस्त रोगसमूहको शीघ्र शांत करतीहै ॥ २ ॥

॥ अथ त्राटकम् ॥

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रुसंपातपर्यन्तमाचार्य्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥ १ ॥

अब त्राटक कहतेहैं कि एकाग्र दृष्टिसे कुछ सूक्ष्म वस्तुको जबलौं नत्रोंमें पानी न आवे निरंतर देखतारहे. नेत्रोंमें जल आनेपर छोडदेवे इसे मत्स्येंद्रादि त्राटक कहतेहैं. मैं (भाषाकार) समझताहूं कि सूक्ष्म वस्तुके स्थानमें प्रथम नासाग्र . .

होनेपर भ्रूमध्य देखे तो औरभी अच्छे गुण शीघ्र होंगे ॥ १ ॥

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ॥ २ ॥

यह त्राटककर्म नेत्ररोगनाशक, बल बढानेवाला, आलस्यनिद्रादियोंका (कपाट) केवाड है तंद्रा और तमोगुणीचित्तवृत्तिके क्रोधादिकोंको दूर करताहे जैसे सुवर्णकी पिटारीको यत्नसे रखतेहैं ऐसेही इसकर्मकोभी गोप्य रक्खे ॥ २ ॥

॥ अथ नौलिः ॥

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥

अब नौलिकर्म कहतेहैं कि दोनहूं कंधा नीचे नवाय उदरको दक्षिणवामभागकरके जलके (भ्रमर) भौंरेके नाई घुमावे इसे सिद्धलोग नौलि कहतेहैं. अनुभवसिद्ध यहभी है कि दक्षिणवामभागसे घुमायके अभ्यास हुयेमें नीचे ऊपरकोभी चरखीके समान उदरनलको घुमाना चाहिये ॥ १ ॥

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादिसंधापिकानन्दकरी सदैव ।
अशेषदोषामयशोषिणी च हठक्रियामौलिरियं हि नौलिः २

॥ अथ कपालभातिः ॥

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥ १ ॥

अब कपालभातिकर्म कहे कि लुहारकी धौंकनी (खाल) के नाई शीघ्र शीघ्र रेचन जो रेचकपूरक करे इसे कपालभाति कहतेहैं इससे बीस प्रकारके कफरोग दूर होतेहैं ॥ १ ॥

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफदोषमलादिकः ।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्ध्यति ॥ २ ॥

उक्त षट्कर्मोंकरके स्थूलभाव कफदोषमलपित्तादि दूर होजातेहैं तब प्राणायाम करे तो विनाश्रमही योगसिद्धि होतीहै ॥ २ ॥

उदरगतपदार्थमुद्वमन्ति पवनमपानमुदीर्य्य कण्ठनाले ।
क्रमपरिचयवश्यनाडिचक्रा गजकरिणीति निगद्यते हठज्ञैः ॥ ३ ॥

अब गजकरणीमुद्राभी प्रसंगसे कहतेहैं कि, अपानवायुको कंठनालमें चढाय उदरगत भुक्तपीतअन्नजलादियोंको निकाले इस अभ्याससेभी नाडिचक्र अपने आधीन (वशीभूत) होताहै इसे हठज्ञयोगी गजकरणी कहतेहैं ॥ ३ ॥

॥ अथ उत्तरार्द्धग्रन्थः ॥

'पूर्वोक्त प्रकारोंसे नाडिशोधन हुयेमें यम–नियम–आसन साधके षट्चक्र षोडशाधारका कर्म जानकर नाडिजाल ना-

डिगत वायु ज्ञात हुयेमें चंद्रतारानुकूल शुभदिन शुभ मुहूर्तमें लग्ननवांशादि शुभ साधके एकांतस्थलमें श्रीगुरु गोरक्ष, गणेशका पूजन मंगलपाठ स्वस्त्ययन कराय योगाभ्यासोपदेशक श्रीगुरुको आराधनसे संतुष्ट कर उन्हींके आज्ञासे योगाभ्यासके आरंभ करना इसमें प्रथम प्राणायामका विस्तार कहतेहैं'—

प्राणो देहे स्थितो वायुरपानस्य निरोधनात् ।
एकश्वसनमात्रेणोद्घाटयेद्गगने गतिम् ॥ १ ॥

प्राणवायु जो देहमें स्थित है और मूलाधारस्थित अपानवायुको ऊपर उठाय रोधकर एकही श्वासमें कुंडलीकरके रुकाहुआ सुषुम्णाद्वारको खोलके सुषुम्णानाडिके चिदाकाशमें ऊर्ध्वगति करताहै सो प्राणायाम सुगम होताहै ॥ १ ॥

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेत्रेधा मात्राद्वादशसंयुतः ॥ २ ॥

रेचक, पूरक, कुंभकके भेदकरके प्राणायाम तीन प्रकारका होताहै. बाहरके वायुको अभ्यंतर प्रवेश करना पूरक, वायुको भीतरही रोकना कुंभक, रुद्धवायुको बाहर निकालना रेचक होताहै प्रणवका स्मरण करनेवाला प्राणायाम है ब्राह्मणको प्रणवका, क्षत्रिय वैश्यको एकाक्षर मंत्रजपका अधिकार है पूरकमें (अ) कारका स्मरणपूर्वक १२ प्रणव जपके चंद्रनाडीसे पूरक (उ) कारके स्मरणपूर्वक चंद्रमंडलका ध्यान सहित १६ प्रणवजपसे कुंभक और (म) कारके ध्यानपू-

र्वक १० प्रणवजपसे रेचक करना. यह एक प्राणायाम होताहै ॥ २ ॥

मात्राद्वादशसंयुक्तौ दिवाकरनिशाकरौ।
दोषजालमपभन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभिः सदा ॥ ३ ॥

प्राणायामके अभ्यास करते २ यदि संयम पूरा न पहुँचे तो नाडी मलिन होजातीहैं इसलिये पुनः नाडीशोधन प्राणायाम कहतेहैं कि चंद्रांग, सूर्य्यांग, प्राणायाम, प्राणापानवायुसंयुक्त १२ प्रणवमात्राकरके पूरक चंद्रमंडल-सूर्य्यमंडलध्यानयुक्त १६ मात्राकरके कुंभक और १० मात्रासे रेचक करके चंद्रसूर्य नाडी मलको नाश करतेहैं ऐसा योगियोंने जानना ॥ ३ ॥

पूरके द्वादशी कुर्यात्कुम्भके षोडशी भवेत् ।
रेचके दश ॐ काराः प्राणायामः स उच्यते ॥ ४ ॥
प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ॥ ५ ॥

पूरकमें १२, कुंभकमें १६, रेचकमें १०, मात्रा प्रणवकी यह प्राणायामप्रकार कनिष्ठ है. इससे द्विगुण अर्थात् पू० २४, कुं० ३२, रे० २०, यह मध्यम और पू० ३६, कुं० ४८, रे० ३०, यह उत्तम प्राणायाम है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अधमे चोद्यते घर्मः कम्पो भवति मध्यमे।
उत्तिष्ठत्युत्तमे योगी ततो वायुं निरोधयेत् ॥ ६

कनिष्ठप्राणायाममें (प्रस्वेद) पसीना होताहै. मध्यममें कंप होताहै. उत्तममें योनिका आधार उठताहै. इसलिये प्राणायामका अभ्यास करना मुख्य है ॥ ६ ॥

बद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्य गुरुं शिवम् ।
भ्रूमध्ये दृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वमाकृष्य चापानवायुं प्राणे नियोजयेत् ।
ऊर्ध्वमानीयते शक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥

प्राणायामकी विधि कहतेहैं कि एकांतस्थलमें मोटे दलवाला कोमलकंबलादि आसनमें पद्मासन बांधके बैठकर श्रीगुरु एवं शिवको प्रमाण करे अमृत स्रवित होरहा, ऐसे चंद्रबिंबका ध्यान भ्रूमध्यकरके दोनहूं दृष्टि भ्रूमध्यमें स्थापन करे तदनंतर ब्राह्मण प्रणवका क्षत्रिय वैश्य (ओम्) इति एकाक्षरमंत्रका पूर्वोक्त मात्राके प्रकारसे पूरक, कुंभक, रेचक, प्राणायाम, चंद्रांग, सूर्यांग, प्रकारकरके निरंतर करतारहै मूलाधार संकोचनपूर्वक अपानवायुको ऊपर खींचके प्राणवायुसे ऐक्य करे तब अपानवायुमिलित प्राणवायुको शक्तिचालनमुद्रासे उठाईगई कुंडलिनीको सुषुम्णामार्गसे ऊपरको चढावे इतने विधि करनेसे योगी समस्तपापोंसे निर्मुक्त होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

द्वाराणां नवकं निरुद्ध्य मरुतं पीत्वा दृढं धारितं ।
नीत्वाकाशमपानवह्निसहितं शक्त्या समुच्चालितम् ॥
आत्मस्थानयुतस्त्वनेन विधिवद्विन्यस्य मूर्ध्नि ध्रुवं ।
यावत्तिष्ठति तावदेव महतां संघेन संस्तूयते ॥ ९ ॥

केवल कुंभकप्राणायामका प्रकार कहते कि षण्मुखी-करक पूरकवायुसे उदर पूर्ण करके ऊपरके ७ नीचेके २ इन नव द्वारोंको रोकके मूलाधारगत कालाग्नि अपानवायुसहित शक्तिचालनप्रकारसे प्रबुद्ध होरही कुंडलिनीको ऊपरको उठाय आज्ञाचक्रसे ऊपर उक्तवायुसे पूर्ण करके स्थिर करे सहस्रकम-लमें रहते परमात्माका ध्यानसे ज्योतिः प्रत्यक्ष करके यावत्का-लसम योगी निश्चल होकर परमात्माका ध्यान करताहै, यही काल योगीका मोक्षसम है. आत्मध्यानतत्पर योगीश्वर सिद्ध इस योगीकी धन्यवादपूर्वक स्तुति करतेहैं यही परम फल योगका है ॥ ९ ॥

प्राणायामो भवत्येवं पातकेन्धनपावकः ।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ॥ १० ॥

इस प्रकारका नित्य निरंतर अभ्याससे प्राणायाम करना अनेक पातकरूपी काठको भस्म करनेवाला अग्नि होताहै. संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाला महासेतु (बडा पूल) योगिजनोंकरके यही प्राणायाम कहाजाताहै ॥ १० ॥

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम् ।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति ॥ ११ ॥

पश्चिमतानआदि आसनोंसे शरीरके अशेष रोग नाश होतेहैं प्राणायामसे समस्त पातक और प्रत्याहारसे मानसिक अनेक विकार नष्ट होतेहैं ॥ ११ ॥

धारणाभिमतो धैर्यं ध्यानाच्चैतन्यमद्भुतम् ।

समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम् ॥ १२ ॥

धारणासे मनमें धैर्य बढनेउत्तर उत्तम ज्ञान मिलताहै ध्यानसे अद्भुत चैतन्य सर्वशाररिक ज्ञान मिलताहै समाधिसे अभिमान त्याग होकर जिसमें पुण्य-पाप लिप्त नहींहोते ऐसा कैवल्य मोक्ष मिलताहै ॥ १२ ॥

प्राणायामद्विपट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ।
प्रत्याहारद्विपट्केन ज्ञायते धारणा शुभा ॥ १३ ॥
धारणा द्वादश प्रोक्ता ध्यानाद्ध्यानविशारदैः ।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥ १४ ॥

बारह प्राणायाम करके प्रत्याहारके फल देनेवाला प्रत्याहार (१२) प्रत्याहार (१४४ प्राणयाम) का धारणाका फल देनेवारी धारणा (१२) धारणा (१७२८ प्राणायाम) का प्राणायामरूप ध्यान (१२) ध्यान (२०७३६ प्राणायाम) का प्राणायामरूप समाधि होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।
तस्मिन् दृष्टे क्रिया कर्म यातायातन्न विद्यते ॥ १५ ॥

समाधिका स्वरूप कहतेहैं. मूलाधारचक्र चतुर्दल कमल कर्णिकामें सुषुम्णाद्वारके संमुख स्वयंभुलिंगके शिरमें देदीप्य, मान बिंब है बिंदुस्वरूप कुंडलिनीका है यह दीप्पमान बिंब समाधिमें अंत न मिलनेवाला, समस्त जगत् व्याप्त करनेवाला-परम ज्योति कालाग्निस्वरूप प्रगट होताहै इसके दर्शन, समा-

धिद्वारा मिलनेसे जन्ममरण नहींहोते कर्ममें लिप्त नहींहोता कैवल्यका अनुभव होजाताहै ॥ १५ ॥

संबद्धासनमेढ्मङ्घ्रियुगलं कर्णाक्षिनासापुटा-
द्वाराण्यङ्गुलिभिर्नियम्य पवनं वक्त्रेण संपूरितम् ।
ध्यात्वा वक्षसि वह्न्यपानसहितं मूर्ध्नि स्थितं धारये-
देवं याति विशेषतत्त्वसमतां योगीश्वरस्तन्मयः॥१६॥

समाधिकी प्रक्रिया दिखातेहै प्रथम सिद्धासन बांधके दोनहूं हाथोंके अंगुठेंसे दोनहूं कर्णछिद्र, तर्जनियोंसे नेत्र, मध्यमाओंसे नासिका, और अनामिका २ कनिष्ठिका २ से मुख रोकके अधिमुखद्वारसे पूरित करके मूलाधारमें रहनेवाला अग्नि तथा अपानवायुसहित प्राणवायुको हृदयकमलमें धारण कर ऊपरको चढाय सहस्रदल कमलमें धारण करना इसप्रकार समाधिके अभ्यास करनेवाला योगी अपानवायुसंमिलित प्राणवायुमय होकर सर्वद्रष्टा साक्षिभूत अंतरात्माके तुल्यताको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

गगनं पवने प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् ॥
घण्टादीनां प्रवाद्यानां तदा सिद्धिरदूरतः ॥ १७ ॥

उक्त प्रकारसे प्राणवायु जब (गगन) सहस्रदल कमलमें प्राप्त होजाय तो घंटा नगारेआदि वाद्योंके ध्वनि प्रकट होतेहै इस चिह्नके मिलनेपर योगसिद्धि समीप है जानना ॥१७॥

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगस्य संभवः ॥ १८

यथायोग्य निरंतराभ्यस्त प्राणायामसे सबरोग क्षय होताहै ऐसेही अविधि विछिन्नाभ्यासादि प्राणायामसे अनेक रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १८ ॥

हिक्काकासस्तथा श्वासः शिरःकर्णाक्षिवेदनाः ।
भवन्ति विविधा रोगा पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥१९॥

अयुक्त प्राणायामाभ्याससे वायु विरुद्ध होकर हिचकी, कास, श्वास, शिरःपीडा, कर्णशूल, नेत्रव्यथाआदि रोग उत्पन्न करताहै ॥ १९ ॥

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः ।
अन्यथा हन्ति योक्तारं तथा वायुरसेवितः ॥ २० ॥

जैसे सिंह, व्याघ्र, गज इत्यादि दुष्ट जंतु मंदमंदकरके उनके अनुकूल कर्मकमसे करके पालकके वशमें रहतेहैं तथापि किसीसमय थोडाभी उनसे विरोध होनेमें अपनेही पालकको मारडालतेहैं तैसेही पावनभी युक्तअभ्याससे वशवर्ती होताहै अयुक्तअभ्याससे रोगादियोंकरके अभ्यासीको अनिष्ट होजाताहै ॥ २० ॥

युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूरयेत् ।
युक्तं युक्तं च बध्नीयादेवं सिद्धिरदूरतः ॥ २१ ॥

वायु शनैः शनैः रेचन करना जैसे नासाछिद्रके सामने रुईका फोहा रक्खाहुआ न उडे. ऐसेही शनैः शनैः पूरकभी करयुक्त युक्त पूरक करना जिससे चित्तोद्वेग श्वासोत्कटता न

होवै थोडासे क्रम सहनयोग्य बढावना उचित है इससे सिद्धि नजदीक मिलतीहै ॥ २१ ॥

॥ अथ ग्रन्थान्तरे प्राणायामभेदाः ॥

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः ।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः ॥ १ ॥

ग्रंथांतरसें प्राणायामके भेद कहतेहैं कि (प्राण) शरीरांतगैत वायुके रोधको प्राणायाम कहतेहैं इसके रेचक, पूरक, कुंभक ३ भेद हैं भीतरसे वायु बाहर छोडना रेचक, बाहरसे वायु उदरमें पूर्णकरना पूरक, और पूरितवायुको घटवत् धारण करना कुंभक कहाताहै कुंभकके भी केवल एवंसहित दो भेद हैं वे केवल योगियोंके संमत है और सहितभी दोप्रकारका है एक रेचकपूर्वक दूसरा कुंभकपूर्वक पहिला रेचकप्राणायामसे दूसरा पूरकप्राणायामसे भिन्न नहींहैं इनके पूरे भेद प्राणायाम प्रकरणसे जानने ॥ १ ॥

यावत्केवलसिद्धिः स्यात्सहितं तावदभ्यसेत् ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥ २ ॥

जबलौं केवल कुंभककी सिद्धि हो तबलौं सहितकुंभक सुष्पांग प्राणायाम करके सुषुम्णानके भेदनके पीछे उसके भीतर घटकासा शब्द हो तब केवल कुंभक सिद्ध होताहै तदनंतर १०। १० बढायके ८० पर्यंत करे सामर्थ हो तो अधिक करे रेचक तथा पूरककोभी छोडके जो वायुधारण करना उसे केवल कुंभक कहतेहैं ॥ २ ॥

प्राणायामोयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः ।
कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ॥ ३ ॥

प्राणायाम जो कहा शुद्ध तो केवल कुंभकही है, अन्य प्रकार नाडीशोधनार्थ हैं रेचकपूरकरहित केवल कुंभकके सिद्ध होजानेमें ॥ ३ ॥

न तस्य दुर्लभं किंचित्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं वायुधारणात् ॥ ४ ॥

योगीको तीनहूं लोकमें कुछभी दुर्लभ नहींहै जब केवल कुंभकके सामर्थ्य होनेसे यथेच्छ (असंख्य) वायु धारण करे ॥ ४ ॥

राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः ।
कुम्भकात्कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥ ५ ॥

इस विधिसे निरसंदेह राजयोगपद प्राप्त होताहै कुंभकके अभ्याससे आधारशक्ति (कुंडलिनी) बोध होताहै इससे निद्रा आलस्यादि मिटतेहैं ॥ ५ ॥

अनर्गला सुषुम्णा च हठसिद्धिश्च जायते ।
हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ।
न सिद्ध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ॥ ६ ॥

और सुषुम्णाके कफादि मल दूर होनेहैं तब हठसिद्धि (मोक्ष) होताहै, हठयोगविना राजयोगसिद्धि राजयोगविना हठयोगसिद्धि नहींहोती इसलिये दोनहूंका अभ्यास करना ॥ ६ ॥

कुंभकसे प्राण संरोधके अंत्यमें चित्तको आश्रयरहित करे इस प्रकारके अभ्यासयोगकरके राजयोगपदको प्राप्त होताहै॥७॥

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता।
नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ॥
आरोग्यता बिन्दुजयोग्निदीपनं ।
नाडीविशुद्धिर्हठयोगलक्षणम् ॥ ८ ॥

हठयोगसिद्धि जब होतीहै तो देहमें कृशता, मुखमें प्रसन्नता, नादकी प्रकटता, नेत्रोंकी निर्मलता, नीरोगिता, धातुका जय, उदरमें जठराग्निकी वृद्धि, नाडियोंकी शुद्धि ये लक्षण होतेहैं॥८॥

चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्।
यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥ २२ ॥

अब प्रत्याहार कहतेहैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द ये पांच विषय हैं इनमें चक्षु, जिह्वा, घ्राण, त्वक्, कर्ण, इन पांच ज्ञानेंद्रियोंके कर्म होतेहैं अर्थात् उक्त ज्ञानेन्द्रियों उक्त विषय-क्रमसे हैं आसन-प्राणायाम सिद्ध करके जिस इंद्रियका जो विषय है उसे दूरसे समीप भावना कर क्रमशः शनैः शनैः त्याग करना अर्थात् इंद्रियसे उसके विषयका अनुभव-करके फेर इंद्रियोंको विषयसे अलग करना प्रत्याहार कहा-ताहै ॥ २२ ॥

यथा तृतीयकालस्थो रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम् ।
तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा ॥२३॥

दिनके प्रातः, मध्याह्न, सायं ये तीन भागसे तीन काल

तेहै. जैसे (तीसरे) सायंकालमें सूर्य्य अपनी (प्रभा) कांतिको क्रमशः हरण करताहै ऐसेही योगीभी तीसरे अंग (आसन १ प्राणायाम २ प्रत्याहार ३) प्रत्याहारमें मानसविकार (विषय) में मनको अभिनिवेशको हरण करना अर्थात् विषयसंबंधसे चित्तको छुटाना ॥ २३ ॥

अङ्गमध्ये यथाङ्गानि कूर्मः संकोचयेद्ध्रुवम् ।
योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि ॥ २४ ॥

जैसे कूर्म (कछुवा) अपने शिरपैरआदि अंगोंको संकोचन कर अपनेही भीतर छिपायदेताहै. अंगतो उसीमें रहतेहैं परंतु न हुयेके तुल्य होजानेहैं ऐसेही योगीनेभी इंद्रियोंको विषयोंसे विमुख कर आत्मामें उनकी वृत्तियोंको थामलेना अर्थात् इंद्रियोंको उनके विषयोंमें आसक्त न होनेंदेना विषयोंसे तृप्त जैसा मानकर इंद्रियोंको अपने भीतर अंतरात्मामें आसक्त करना ।। २४ ॥

यं यं शृणोति कर्णाभ्यामप्रियं प्रियमेव वा ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥२५ ॥
अगन्धमथवा गन्धं यं यं जिघ्रति नासिका ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥२६॥
अमेध्यमथवा मेध्यं यं यं पश्यति चक्षुषा ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २७ ॥
अस्पृश्यमथवा स्पृश्यं यं यं स्पृशति चर्मणा ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २८ ॥

लवण्यमलवण्यं वा यंयं रसति जिह्वया ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २९ ॥

कर्णसे मधुर वा कठोर जैसे शब्दोंको सुनताहै ऐसे मनभी कर्णद्वारा शब्दमें आसक्त होताहै. योगिजन उक्त शब्दोंकोभी यह्भी आत्माही है, समझ वह मतमें निश्चय कर मनको उक्त शब्दविषसे प्रत्याग्रहण करे अर्थात् शब्दको विषय मनके जो मनमें सर्सभ्रम शब्द सुननेका भ्रम होताहै उस भ्रमसे मनको उसे मिथ्या (विनाशी) जानकर मनको उससे हटावे जैसे (रज्जु) रस्सीमें सर्पका एवं स्थाणु वृक्ष प्रस्तरादियोंमें मनुष्य भूतादि भ्रांति होतीहै. वैसेही अखंडानंदस्वरूप आत्मचैतन्यमें संसार यद्वा देह है कहकर बुद्धि भ्रांति करके कल्पना करतीहै वस्तुतः आत्मतत्त्वातिरिक्त कुछभी नहींहैं. इसकारण संपूर्णजगत् आत्मस्वरूप हैं. ऐसेही शब्दादि उक्त विषयोंकोभी आत्माही है भावनापूर्वक निश्चय करके बाहर भीतर अद्वैतानंदस्वरूप आत्मासे अन्य कोई नहींहै ऐसी धारणा स्थिर करके शब्दादि विषयोंकों चलायमान हुयेमेंभी उन्हें आत्मा माने विषय न माने नासिकासे सुगंध वा दुर्गंध जो सूंघताहै उसे आत्माही है निश्चय करके नासिकाकी वृत्ति जो गंधद्वारा मनको लुभाय भ्रममें डालतीहै उसे हटावे नेत्रेंद्रियसे जोजो पवित्र वा अपवित्र पदार्थ देखताहै उन्हेंभी आत्माही है निश्चयकर रूपविषयसे मिथ्याभ्रम छोडके नेत्रेंद्रियवृत्तिको उक्त विषयसे हटावै त्वगिंद्रियसे मृदु वा कठोर तप्त वा शीतआदि जिस २ पदार्थको स्पर्श करताहै

भी आत्माही है भावना निश्चयकर त्वगिंद्रियवृत्ति जो स्पर्शसुखमें मनको लुभातीहै उसको हटावे जिह्वासे सलोना, आनोना, मिष्ट, कटुक आदि जिन २ रसोंको चखताहै उन्हें आत्माही समझकर जिव्हाकी वृत्तिको हटावे इसप्रकार योगी प्रत्याहारके अभ्यास करके पंचेंद्रियवृत्तियोंको अपने २ विषयोंसे हटाय आत्मतत्त्वमें स्थिर करना जब प्रत्याहार सिद्ध होजाताहै तो योगी कानोंसे सुनें मधुरशब्दको तुल्य मानताहै कोहीभी इसके चित्तको अपने ओर नहींलेजायसकते. ऐसेही नेत्रोंसे देवता वा पिशाच, मनुष्य वा कुत्ता, ब्राह्मण वा चांडाल, गौंना गदहा इत्यादि सभीकों तुल्य देखताहै. नासिकासे कस्तूरिआदि सुगंधी वा पुरीपादि दुर्गंधियोंसे तुल्य सुख मानताहै त्वचासे अग्नि वा जल षोडशीस्त्रीकुच वा कृपाण (आरे) की धारा आदियोंके स्पर्शसे तुल्य सुख मानताहै और जिह्वासे मीठा वा कडुवा, तप्त वा शीत, तीक्ष्ण (मिर्च) वा, दुग्ध, मिट्टी, रेत, गोबर वा हलुवा, पूडीआदियोंको तुल्य स्वादिष्ट मानताहै॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥

चन्द्रामृतमयीं धारां प्रत्याहरति भास्करः ।
यत्प्रत्याहरणं तस्याः प्रत्याहारः स उच्यते ॥३०॥

प्रत्याहारके विधि कहनेउपरांत केवल हठयोगहीसेभी प्रत्याहारकी विधि कहतेहैं कि, षोडशदल कमलकर्णिकास्थित चंद्रबिंबसे जो अमृतधारा गिरतीहै उसे नाभिकमलस्थित सूर्य्य ग्रासकर लेताहै. तो उक्त धाराको विपरीतकरणीमुद्रा करके सूर्यसे हटाय अपने मुखमें पारे. इसे प्रत्याहार कहतेहैं ॥ ३० ॥

एका स्त्री भुज्यते द्वाभ्यामागता चन्द्रमण्डलात्।
तृतीयो यः पुनस्ताभ्यां स भवेदजरामरः ॥ ३१ ॥

एका स्त्री पदसे कंठस्थानगत चंद्रमासे निकसी अमृतधारा का बोधन है (द्वाभ्यां) पदसे सूर्य्यचंद्रमाका बोध है तृतीय पदसे आप (योगी) हैं उक्त अमृतधारा कंठ एवं नाभिगत चंद्रसूर्य्यसे भोग करतेहैं इसको तीसरा (आप) स्वयं विपरीतकरणीमुद्रा करके उक्त चंद्रसूर्य्यसे बचायकर भोग करे तो अजरामर होताहै ॥ ३१ ॥

नाभिदेशे वसत्येको भास्करो दहनात्मकः।
अमृतात्मा स्थितो नित्यं तालुमूले च चन्द्रमाः॥३२॥

अग्निमय एक सूर्य्य नाभिमें निवास करताहै अमृतात्मक चंद्रमा विशुद्धचक्रमें रहताहै ॥ ३२ ॥

वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रो ग्रसत्यूर्ध्वमुखो रविः।
ज्ञातव्या करणी तत्र यथा पीयूषमाप्यते ॥ ३३ ॥

विशुद्धचक्रमें रहकर अधोमुख चंद्रमा अमृतधारा वर्षाताहै उस धाराको नाभिस्थित ऊर्ध्वमुख सूर्य्य पीलेताहै योगीकरके उक्त सूर्य्यको बंचनकर उक्त अमृतधाराको अपने मुखमें प्राप्त कियाजाताहै उसे विपरीतकर्णी जानना ॥ ३३ ॥

ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी।
करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ ३४ ॥

जो नाभिगत सूर्य्यको ऊपर (तालु) विशुद्धगत चंद्रमाको नीचे करे यह विपरीतकरणी गुरुमुखहीसे जानीजातीहै.

लिखनेसे नहीं किंतु सुबोध योगियोंको इतना औरभी स्मरण करातेहैं कि यह मुद्रा प्राणायाम योग एवं खेचरीमुद्रासाधनके उपरांत इन्हींसे सुगम होजातीहै ॥ ३४ ॥

त्रिधा बद्धो वृषो यत्र रोरवीति महास्वनः ।
अनाहतं च तच्चक्रं हृदये योगिनो विदुः ॥ ३५ ॥

तीन फेरा रस्सियोंसे बँधा वृषभ जैसे पराधीन होकर शब्द करताहै ऐसेही अनाहतचक्रमें सत्त्व-रज तमोगुणस्वरूपमाया-विषैं प्रतिबिंबित होरहा जीव परा-पश्यंति-मध्यमाविषैं प्रतिबिंबित होरहा जीव परा-पश्यंति-मध्यमाके क्रमसे हृदयमध्यमें नादसहित होकर निरंतर शब्द करताहै अनाहतचक्रको हृदयमें योगिजन जानतेहैं ॥ ३५ ॥

अनाहतमतिक्रम्य चाक्रम्य मणिपूरकम् ।
प्राप्ते प्राणे महापद्मं योगी स्वममृतायते ॥ ३६ ॥

खेचरीमुद्राकरके अमृतपानको सूचित करतेहैं कि प्राणापानवायुको एकत्व कर मणिपूर अनाहतचक्रोंको उल्लंघन करके महापद्म (ब्रह्मस्थान) को प्राप्त करके योगी अमृतमय शरीर उक्तामृतपानसे होजाताहै ॥ ३६ ॥

ऊर्ध्वं षोडशपत्रपद्मगलितं प्राणादवाप्तं हठा-
दूर्ध्वास्यो रसनां निधाय विधिवच्छक्तिं परां चिन्तयेत् ।
तत्कल्लोलकलाजलं सुविमलं जिह्वाकुलं यः पिबे-
न्निर्दोषः स मृणालकोमलवपुर्योगी चिरं जीवति ॥३७॥

उक्त प्रकारकरके ब्रह्मस्थानपर्य्यंत प्राणवायुको पूर्णकर

जो योगी शिरमें रहते सहस्रदल कमलसे विशुद्धचक्रमें गिरती वेला प्राणवायुको ऊपर चढाय नासिका ऊर्ध्वविवरमें प्राप्त करे ऊर्ध्व विवरमें जिह्वा प्रवेश कर अपना मुखभी ऊपरको करके सहस्रदलकमलमें प्राणवायुसहित प्राप्तहुई कुंडलिनीका ध्यान करता कुंडलिनीका सहस्रदलमें प्रवेश होतेही जो अमृताकार तरंग निकलताहै उसका लेशभूत अतिनिर्मल जिह्वाके मथनसे निकलेहुये अमृतको पान करे वह योगी अतिसुकुमार शरीर पायके समस्त रोगदुःखोंसे रहित होकर बहुतकालपर्यंत जीवित रहताहै ॥ ३७ ॥

काकचञ्चुवदास्येन शीतलं सलिलं पिबेत् ।
प्राणापानविधानेन योगी भवति निर्जरः ॥ ३८ ॥

अपानवायुको उठाय अपानवायुके साथ ऐक्य करनेवाले प्रकारसे काक (कौवे) कासा चोंच मुखकर शीतल सलिल (बाह्यवायु) को जो योगी पूरक (पूर्ण) करताहै वह वृद्धावस्थासे रहित होताहै अर्थात् सर्वदा युवाही रहताहै ॥ ३८ ।

रसना तालुमूलेन यः प्राणमनिलं पिबेत् ।
अब्दार्द्धेन भवेत्तस्य सर्वरोगस्य संक्षयः ॥ ३९ ॥

जिह्वाके सहाय करके तालुमूलसे जो विवर(छिद्र) है इसकरके जो योगी प्राणवायुको पूर्ण (पूरित) करताहै उसके छः महिनेके अभ्याससे समस्त रोगोंका नाश होताहै ॥ ३९ ॥

विशुद्धे पञ्चमे चक्रे ध्यात्वासौ सकलामृतम् ।
उन्मार्गेण हतं याति वञ्चयित्वा मुखं रवेः ॥ ४० ॥

पांचवां विशुद्धचक्र (जो कंठमें रहताहै) में चंद्रकलामृतका ध्यानकरके क्रमसे ऊपरको हरण करताहुवा सूर्यके मुखको वंचनकर योगीके मुखमें उक्त चंद्रकलामृत पडताहै इसप्रकार जिह्वाद्वारा उदरमें प्राप्त होकर योगीके जरा, रोगादियोंको हरलेताहै ॥ ४० ॥

विशब्देन स्मृतो हंसो नैर्मल्यं शुद्धिरुच्यते ।
अतः कण्ठे विशुद्धाख्यं चक्रं चक्रविदो विदुः॥४१॥

'वि' शब्द हंसका और 'शुद्ध' शब्द निर्मलका बोधक है कंठमें अत्यंत निर्मल विशुद्धनामा चक्र है. यह सर्वोत्कृष्ट है चक्रोंके तत्त्व जाननेवाले योगी जानतेहै ॥ ४१ ॥

अमृतं कन्दरे कृत्वा नासान्तसुषिरे क्रमात् ।
स्वयमुत्रालितं याति वर्जयित्वा मुखं रवेः ॥ ४२ ॥

विशुद्धचक्रस्थ चंद्रकलामृतको अपानवायुसहित प्राणवायुको ऊपर चलायके लंबिका ऊर्ध्वविवरमें प्रवेश (पूर्ण) कर क्रमसे नासिकाके ऊपर विवरमें पहुँचानेसे नाभिसूर्यके मुख (जो अमृतको भस्म करताहै) को वंचन (छलन) करके उक्तामृत उदरमें अन्नके समान पहुँचताहै ॥ ४२ ॥

नासा ऊर्ध्वविवरमें पूरित करे तब सर्वद्वारोंको रोकके (गगन) आज्ञाचक्रमें प्राणापानवायुसहित पूरण करके ऊर्ध्वमुख होकर भूमि उत्तान लेटकर पैरोंकोभी उत्तान करके जितेंद्रिय होकर उत्कामृतपान करना जो योगी निरंतर इस विधिको करताहै उसका क्षय (मृत्यु) नहींहोती ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्वं जिह्वां स्थिरीकृत्य सोमपानं करोति यः ।
मासार्द्धेन न सन्देहो मृत्युं जयति योगवित् ॥ ४४ ॥

जिह्वाको ऊपर लंबि करके ऊपर स्थिर करके जो योगी अमृतपान करताहै उस अभ्यासीको एकही पक्ष (१५ दिन) में मृत्यु जीतनेंकी सामर्थ्य होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ ४४ ॥

बद्धं मूलबिलं येन तेन विघ्नो विदारितः ।
अजरामरमाप्नोति यथा पञ्चमुखो हरः ॥ ४५ ॥

जिस योगीने (मूलबंध) मूलद्वार रोका उसने जरामरणादि विघ्नका नाश करलिया, इस हेतु जरामरणयुक्त देहमें आत्मभावको छोडकर जरामरणरहित शुद्ध आत्मभावको प्राप्त होताहै जैसे पंचवक्त्र सदाशिव देहाहंकार जरामरणादिरहित विराजमान हैं ऐसेही उक्त अभ्यासीभी होताहै ॥ ४५ ॥

संपीड्य रसनाग्रेण राजदन्तबिलं महत् ।
ध्यात्वामृतमयीं देवीं षण्मासेन कविर्भवेत् ॥ ४६ ॥

जो जिह्वाग्रसे राजदंतके बिल (रंध्र) को अचेतन (पीडन) कर अमृतमयी वागीश्वरी देवीके ध्यानका अभ्यास करताहै

अभ्यास सिद्ध होनेपर छैः महीनेमें विचित्र कवितासामर्थ्य कवि होजाताहै ॥ ४६ ॥

सर्वाधाराणि बध्नाति तदूर्ध्वं धारितं महत् ।
न मुञ्चत्यमृतं कोपि स पन्थाः पञ्च धारणाः ॥४७॥

जिह्वाग्रसे पीडनकर राजदंतके छिद्रको रोकनेसे समस्त नाडियोंके मुख रुक जातेहैं. ऊपरके रुकनेसे अमृतधारा गिरके अन्यत्र नहीं गिरसकती पंच धारणाके अभ्यासी योगीकोभी जैसे इसीमें चंद्रमासे निस्सरित अमृतका हरण प्रत्याहार कहाहै तैसेही अमृतको लंबिकाके ऊर्ध्वविवरमें धारणा करना यह धारणा होतीहै ॥ ४७ ॥

चुम्बन्ती यदि लम्बिकाग्रमनिशं जिह्वा रसस्यन्दिनी।
सक्षारं कटुकाम्लदुग्धसदृशं मध्वाज्यतुल्यं तथा ॥
व्याधीनां हरणं जरान्तकरणं शास्त्राङ्गमोद्गीरणं ।
तस्य स्यादमरत्वमष्टगुणितं सिद्धाङ्गनाकर्षणम् ४८

जिह्वासे लंबिकाके निरंतर चुंबनाभ्यास करनेवाले योगीको कभी लवण, कभी चरपरा, कभी खट्टा, कभी दूधसा, कभी सहदकासा, कभी घीकासा स्वाद जिह्वामें अनुभव होतेहैं ये लक्षण जब अभ्यास सिद्ध हुयेमें होनेलगतेहैं तब योगीके व्याधि (रोग) नाश होतेहैं. वृद्धावस्थाका निवारण होताहै शास्त्रके व्याख्यान करनेके सामर्थ्य विनापटेभी होतीहै अमृतमयशरीर होकर अष्ट सिद्धि मिलतीहैं स्मरणमा[illegible]र्थ, नागादिकन्याओंके आकर्षण करनेके

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनो द्वित्रिवत्सरात्।
ऊर्ध्वं प्रवर्तते रेतोप्यणिमादिगुणोदयः ॥ ४९ ॥

उक्त प्रत्याहारका फल कहतेहैं कि उक्त प्रकारसे अमृतसे परिपूर्ण जब देह योगीका होजाताहै तो २।३ वर्ष अभ्याससे वीर्य (रेत) ऊपरको चढजाताहै ऊर्ध्वरेता होकर कदाचित् भी वीर्य्य स्खलित नहींहोता एवं अणिमादि सिद्धि उदय होतीहैं ॥ ४९ ॥

इन्धनानि यथा वह्निस्तैलवर्तिं च दीपकः।
तथा सोमकलापूर्णदेहं देही न मुञ्चति ॥ ५० ॥

जैसे अग्नि शुष्ककाष्ठ एवं दीपक तैलवर्तिको समग्र भस्म कियेविना नहीं छोडता तैसेही जीवात्माभी चंद्रकलामृतसे पूर्णहुये योगीके शरीरको कदापि नहींछोडता ॥ ५० ॥

नित्यं सोमकलापूर्णशरीरं यस्य योगिनः।
तक्षकेणापि दष्टस्य विषं तस्य न सर्पति ॥ ५१ ॥

जिस योगिका शरीर नित्य सोमकलामृतसे पूर्ण रहताहै उसे तक्षकनागभी डसे (काटे) तोभी शरीरमें विष नहीं फैलता ॥ ५१ ॥

इति प्रत्याहारप्रकरणम्.

'अब ९ श्लोकसे धारणाका विस्तार कहतेहैं'—

आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः।
प्रत्याहारेण संपन्नो धारणां च समभ्यसेत् ॥ ५२ ॥

आसनका साधन प्राणायामका साधन प्रत्याहारका अभ्या-

स्थिर करके इंद्रियवृत्तियोंको रोकनेके सामर्थ्य हुयेमें धारणका अभ्यास करना ॥ ५२ ॥

हृदये पञ्च भूतानां धारणा च पृथक् पृथक् ।
मनसो निश्चलत्वेन धारणा साभिधीयते ॥ ५३ ॥

हृदयमें मन एवं प्राणवायुको निश्चल करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशसंज्ञक पंच भूतोंको पृथक् पृथक् संधार करना धारणा कहातीहै ॥ ५३ ॥

या पृथ्वी हरितालहेमरुचिरा पीता लकारान्विता
संयुक्ता कमलासनेन हि चतुष्कोणा हृदि स्थायिनी ।
प्राणांस्तत्र विलीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वितान्धारये-
देषा स्तम्भकरी सदा क्षितिजयं कुर्याद्भुवो धारणा ५४

पहिले पृथ्वीधारणा कहतेहैं कि जो पृथ्वी हरिताल यद्वा सुवर्णसमान रमणीयवर्ण अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मासहित चतुष्कोणाकार मध्यमें (लँ) बीजयुक्त है इस (लं) पृथ्वीतत्त्वको हृदयमें ध्यान करके भावना करना उक्त भूमंडलमें आपभी लीन होना चित्तसहित प्राणको लीन करके पांच (५) घटीपर्यंत स्तंभन करनेवाली धारणा होतीहै इस धारणाके सर्वदा अभ्यास करनेसे पृथ्वीतत्त्व अपने वशवर्त्ती होताहै ॥ ५४ ॥

अर्द्धेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं कण्ठेम्बुतत्त्वं स्थितं
यत्पीयूष-व-कारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्च घटिका चित्तान्वितं धारये-
देषा दुःसहकालकूटदहनी स्याद्वारुणी धारणा॥५५॥

वारुणी (जल) धारणा कहतेहैं कि अर्द्धचंद्राकार कुंद पुष्पसमान श्वेतवर्ण अमृतरूप (वँ) बीजमध्यसहित अधिष्ठातृ-देवता विष्णुसहित जलतत्त्वको विशुद्धचक्रमें ध्यान करना उक्त जलतत्त्वमें आपभी लीन होकर चित्तसहित प्राणको लीन कराय पांच घटीपर्यंत धारणा करना यह जलस्तंभन करनेवाली वारुणीधारणा है इसके सर्वदा अभ्यास करनेसे कालकूटविषकाभी भस्म होजाताहै विषका असर शरीरमें नहींहोता ॥ ५५ ॥

यत्तालुस्थितमिन्द्रगोपसदृशं तत्त्वं त्रिकोणानलं
तेजो रेफयुतं प्रवालरुचिरं रुद्रेण सत्सङ्गतम् ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकं चित्तान्वितं धारये-
देषा वह्निजयं सदा वितनुते वैश्वानरी धारणा॥५६॥

आग्नेयी धारणा कहतेहैं कि (इंद्रगोप) वीरबहूटी कीडेके सदृश रक्तवर्ण त्रिकोणाकार (प्रवाल) मूंगासमान रमणीय तेजोरूप (रँ) बीजमध्य शोभित अधिष्ठातृदेवता रुद्रसहित आग्नेयतत्त्वको तालुस्थानमें भावनाकरके उक्त अग्नितत्त्वमें आपभी लीन होकर चित्तसहित प्राणको लीन कराय पांच घटीपर्यंत तन्मय होना वैश्वानरी धारणा होतीहै इसके सर्वदा सेवन करनेसे योगी अग्निको जीतनेवाला होताहै अग्नि उसको दाह नहींकरता ॥ ५६ ॥

यद्भिन्नाञ्जनपुञ्जसन्निभमिदं स्यूतं भ्रुवोरन्तरे
तत्त्वं वायुमयं यकारसहितं तत्रेश्वरो देवता ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकं चित्तान्वितं धारये-

देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा५७

वायवी धारणा कहतेहैं कि वर्तुलाकार कज्जलके पुंजसमान अतिनीलवर्णा (यँ) बीजसहित अधिष्ठातृदेवता, ईश्वरसहित वायुतत्त्वको भ्रूमध्यमें ध्यानकर उक्त वायुतत्त्वमें आपभी लीन हो या चित्तसहित प्राणको लीन कर पांच घटीपर्यंत स्थिर रखना यह वायुतत्त्वकी धारणा है इस धारणाके नित्य अभ्यास करनेसे आकाशमें गति होतीहै ॥ ५७ ॥

आकाशं सुविशुद्धवारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थितं
तन्नादेन सदा शिवेन सहितं तत्त्वं हकारान्वितम् ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकं चित्तान्वितं धारये-
देषा मोक्षकपाटपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ५८

नभोधारणा कहतेहैं कि वर्तुलाकार निर्मलजलसमान वर्ण (हँ) बीजसहित अधिष्ठातृदेवता सदाशिवसहित आकाशतत्त्वको ब्रह्मरंध्रमें ध्यान करना इस तत्त्वमें आपभी लीन हो चित्तसहित प्राणको लीन कर पांच घटीपर्यंत स्थिर रखना यह नभोधारणा मोक्षरूपी द्वारके खोलनेमें चतुर है इसके नित्य अभ्यास करनेसे मोक्षद्वार खुल जाताहै ॥ ५८ ॥

स्तम्भिनी द्राविणी चैव दहनी भ्रामिणी तथा ।
शोषिणी च भवन्त्येषा भूतानां पञ्च धारणाः ॥५९॥

पृथ्वीधारणाके अभ्यास दृढ हुयेमें जलपवनादि स्तंभनसामर्थ्य होतीहै वारुणीधारणाके अभ्यास दृढ हुयेमें समस्तद्रव्यमात्रको (द्रव) जलसमान करनेकी सामर्थ्य होतीहै एवं आग्नेयी-

विनां अग्निही वस्तुमात्रको जलानेकी सामर्थ्य होतीहै वायु-धारणासे वस्तुमात्र किंवा समस्त जगत्को घुमानेकी सामर्थ्य होतीहै नभोधारणासे सर्व शोषण सामर्थ्य होतीहै ये पंच धार-णाओंके साधारण क्रिया हैं ॥ ५९ ॥

कर्मणा मनसा वाचा धारणाः पञ्च दुर्लभाः।
विज्ञाय सततं योगी सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

कर्म (अनुष्ठान) से मनके चिंतनसे वचन शास्त्राज्ञाके प्रमा-ण माननेसे निरूपण कर पांचों धारणाओंको स्थिराभ्यास कर-ताहै वह समस्त दुःखोंसे मुक्त होताहै ॥ ६० ॥

इति धारणाः

स्मिरत्येव सर्वचिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते।
यच्चित्ते निर्मला चिन्ता तद्धि ध्यानं प्रचक्षते ॥६१॥

'स्मृ' यह धातु चिंतासामान्यवाचक है सो चित्तमें यो-गशास्त्रोक्तप्रकारसे निर्मलांतरकरके आत्मतत्त्वका स्मरण कर-ना ध्यान कहाताहै ॥ ६१ ॥

द्विविधं भवति ध्यानं सकलं निष्कलं तथा।
सकलं चर्य्याभेदेन निष्कलं निर्गुणं भवेत् ॥ ६२ ॥

यह ध्यान सगुण, निर्गुण भेदसे दो प्रकार है जैसे श्यामवर्ण चतुर्बाहु वनमाला-मुकुट-कुंडल-पीतांबरधारी विष्णुका ध्यान करना सगुणध्यान है ॥ ६२ ॥

अन्तश्चेतो वहिश्चक्षुरधः स्थाप्य सुखासनः।
कुण्डलिन्या समायुक्तं ध्यात्वा मुच्येत किल्विषात्॥६३

एकांत पवित्रस्थानमें बैठके पद्मासन वा स्वस्तिकासन बांध शरीर सरल बनाय आधारादिचक्रोंमें अंतःकरण (मन) लगाय नासाग्रदृष्टि देकर निश्चल एकाग्र होकर कुंडलिनी सहित ध्येयवस्तुका ध्यान करना इससे योगी समस्तपापोंसे निर्मुक्त होताहै यह ध्यानमुद्रा है ॥ ६३ ॥

आधारं प्रथमं चक्रं स्वर्णाभं च चतुर्दलम् ।
कुण्डलिन्या समायुक्तं ध्यात्वा मुच्येत किल्बिषैः॥६४॥

योगीजनोंके ध्यान करनेयोग्य चक्रस्थान हैं इनमें प्रथम मूलाधारचक्र सुवर्णवर्ण चतुर्दल कमल है इसके कर्णिकामें स्वयंभूलिंगके शिरमें बिंबाकार साढेतीन वृत्तवेष्टित हो रही कुंडलिनीसहित इस चक्रके ध्यान करनेसे समस्त पापोंसे निर्मुक्त होताहै ॥ ६४ ॥

स्वाधिष्ठाने च षट्पत्रे सन्माणिक्यसमप्रभे ।
नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा योगी सुखी भवेत्॥६५॥

द्वितीय स्वाधिष्ठानचक्र रक्तवर्ण षट्दलकमलकर्णिकामें सगुण वा निर्गुण ज्योतिःस्वरूप आत्माको नासाग्रदृष्टि करके ध्यान करनेसे योगी आनंदावस्थाको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥

तरुणादित्यसंकाशे चक्रे च मणिपूरके ।
नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा संक्षोभयेज्जगत् ॥६६॥

तृतीय मणिपूरचक्र उदय होते सूर्य्यमंडलसमान रक्तवर्ण कमलकर्णिकामें सगुण वा निर्गुण ज्योतीरूप आत्माको नासा-

ग्रदृष्टिकरके ध्यान करनेसे योगी समस्त जगत्क्षोभ करनेकी सामर्थ्य पाताहै ॥ ६६ ॥

हृदाकाशे स्थितं शम्भुं प्रचण्डरवितेजसम् ।
नासाग्रे दृष्टिमाधाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्॥६७॥

चतुर्थ हृदयरूप आकाश अनाहतचक्रकर्णिकामें रहते प्रचंडतेजवान् सूर्य्यसमान तेजस्वी बाणलिंग (शिव) का ध्यान नासाग्रदृष्टि देकर करनेसे योगी ब्रह्ममय होताहै ॥ ६७ ॥

विद्युत्प्रभे च हृत्पद्मे प्राणायामविभेदतः ।
नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्॥६८॥

ऐसेही विद्युत् (विजुरी) समान प्रभायुक्त हृदयकमल कर्णिकामें उक्त प्रकारसे नासाग्रदृष्टि देकर सगुण वा निर्गुण ज्योतिःस्वरूप आत्माके ध्यान करनेसे योगी ब्रह्ममय (जीवन्मुक्त) होताहै ॥ ६८ ॥

सततं घण्टिकामध्ये विशुद्धे दीपकप्रभे ।
नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥६९॥

कंठस्थानमें दीपज्योतिसमान कांतिमान् विशुद्धचक्रमें नासाग्रदृष्टिकरके सगुण निर्गुण वा ज्योतिःस्वरूप आत्माके ध्यान करनेसे योगी अमर (मरणरहित) होताहै ॥ ६९ ॥

भ्रुवोरन्तर्गतं देवं सन्माणिक्यशिखोपमम् ।
नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वानन्दमयो भवेद् ॥७०॥

भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रमें माणिकशिखा (चूनीकी सूक्ष्म चमक)

समान रक्तवर्ण आत्माको नासाग्रदृष्टि देकर ध्यान करनेसे योगी समस्त दुःखरहित आनंदमय होताहै ॥ ७० ॥

ध्यायन्नीलनिभं नित्यं भ्रूमध्ये परमेश्वरम् ।
आत्मानं विजितप्राणो योगी योगमवाप्नुयात्॥७१॥

आज्ञाचक्रमें नीलवर्ण शिवपरमात्माका ध्यान प्राणायाम प्रकारकरके करनेसे योगी जीवात्मा परमात्माके ऐक्यको पाताहै ॥ ७१ ॥

निर्गुणं च शिवं शान्त गगने विश्वतोमुखम् ।
नासाग्रदृष्टिरेकाकी ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत ॥७२॥

आज्ञाचक्रमें निर्गुणरूप, शात, विश्वव्यापक, शिवके नासाग्रदृष्टि देकर ध्यान करनेसे जीवत्वको देनेवाले गुणधर्मसे रहित होताहै अर्थात् जीवभावका स्मरणमात्रभी नहींरहता७२॥

आकाशे यत्र शब्दः स्यात्तदाज्ञाचक्रमुच्यते ।
तत्रात्मानं शिवं ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयात ॥७३॥

जिस तत्त्वमें नाद प्रकट होताहै ऐसा आकाशतत्त्वस्थान मनका स्थान है सोही भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र कहाताहै इसमें रहते सदाशिवरूप आत्माके ध्यान करनेसे योगी कैवल्य मुक्ति पाताहै ॥ ७३ ॥

निर्मलं गगनाकारं मरीचिजलसन्निभम् ।
आत्मानं सर्वगं ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयाव ७४

आज्ञाचक्र ऊपर शून्यस्थानमें करनेयोग्य ध्यान च हतेहैं कि, स्वरूपको आच्छादित करनेवाला, मलिनसंबधर्म रहित,

आकाशसमान, एकाकार, सर्वव्यापक, प्रकाशमान तेजःस्वरूपके ध्यान करनेसे योगी मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

गुदं मेढ्रश्च नाभिश्च हृत्पद्मं च तदूर्ध्वतः ।
घण्टिका लम्बिकास्थानं भ्रूमध्ये च नभोबिलम् ७५

ध्यानमुक्त नव (९) स्थानोंको पुनः स्मरण करतेहैं कि, गुदा (मूलाधार) १ मेढ्र (स्वाधिष्ठान) २ नाभि (मणिपूर) ३ हृदय (अनाहत) ४ तदूर्ध्व (विशुद्ध) ५ घंटिकाका मूल ६ लंबिकाका स्थान ७ आज्ञाचक्र ८ इसके ऊपरका शून्यस्थान ९ ये नव ध्यानयोग्य स्थान हैं ॥ ७५ ॥

कथितानि नवैतानि ध्यानस्थानानि योगिभिः ।
उपाधितत्त्वमुक्तानि कुर्वन्त्यष्टगुणोदयम् ॥ ७६ ॥

योगियोंने उक्त नव (९) स्थान ध्यानोपयोगी कहेहैं इन्हें उपाधि अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वोंकरके सहित करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धियोंका उदय होताहै ७६

एष ब्रह्मात्मकं तेजः शिवज्योतिरनुत्तमम् ।
ध्यात्वा ज्ञात्वा विमुक्तः स्यादिति गोरक्षभाषितम् ७७

उक्त नव (९) स्थानोंमें सर्वोत्कृष्ट शिव अनाहत आज्ञाचक्रोंमें उक्त प्रकारसे साकार सगुणस्वरूपको अथवा निराकार निर्गुणब्रह्मको भावना करके उक्त स्थानोंमें ध्यान करनेसे योगी संसारसे मुक्त होकर पुनर्जन्ममरणरूप संतापसे छुटताहै यह श्रीगोरक्षनाथ प्रतिज्ञा करके कहतेहैं इसमें संशय न मानना ७७

नाभौ संयम्य चित्तं पवनगतिमधो रोधयत्संप्रयत्ना-

दाकुञ्च्यापानमूलं हुतवहसदृशं तन्तुवत्सूक्ष्मरूपम् ।
तद्बद्ध्वा हृत्सरोजे तदनु दलणके तालके ब्रह्मरन्ध्रे
भित्त्वा ते यान्ति शून्यं प्रविशति गगने यत्र देवो महेशः॥

चित्त (अतःकरण) को मणिपूरचक्रमें स्थिर करके अपानद्वारको बडे प्रयत्नसे संकोच विकाश कर अपानवायुको अधोगतिको रोकके ऊपरको उठाय मन एवं प्राणवायुसे ऐक्य करे सूत्रके समान सूक्ष्म अग्निसमान देदीप्यमान ज्योतिःस्वरूपको उक्त ऐक्यविषये चिंतन करनेसे उक्त ज्योति नाभिचक्रको वेधनकर हृदयकमलमें पहुँचताहै पुनः अभ्यास सिद्ध हो तो हृदयकमलको वेधकर ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचताहै इसी विधिसे योगियोंके शरीरत्यागसमयमें वही ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मरन्ध्रको भेदनकर परमशिव शून्याकार चिदाकाशमें प्रवेश कर परब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ ७८ ॥

नाभौ शुभ्रारविन्दं तदुपरि विमलं मण्डलं चण्डरश्मेः ।
संसारस्यैकरूपां त्रिभुवनजननीं धर्मदात्रीं नराणाम् ॥
तस्मिन्मध्ये त्रिमार्गे त्रितयतनुधरां छिन्नमस्तां प्रशस्तां ।
तां वन्दे ज्ञानरूपां मरणभयहरां योगिनीज्ञानमुद्राम् ७९

मणिपूरचक्रमें शुक्लवर्ण कमल चिंतनपूर्वक उसके मध्यमें निर्मल सूर्य्यमंडलका ध्यान करना इस मंडलके मध्यमें सत्त्व-रज-तम त्रिगुणरूप उपाधिभेदसे तीन प्रकारको प्राप्त होरही सुषुम्णा-नाडीके द्वारमें संसारके कारणरूपा त्रैलोक्यके उत्पन्न करनेहारी जन्ममरणोपाधिग्रस्त मनुष्योंको उपासनामार्गसे मोक्षरूप परमध-

मे देनेहारी. त्रिगुणरूप होरही ज्ञानस्वरूपिणी (जिसकी स्तुति ब्रह्मादिदेवता सनकादि सिद्ध करतेहैं) तथा योगमात्रसे गम्या, ज्ञानमात्र उपाधिसे होरही छिन्नमस्ता नाडीस्वरूप भासमान हो-रही कुंडलिनीको स्तुति (अभिवादन) करताहूं इसप्रकार योगी छिन्नमस्ता महाविद्यारूप कुंडलिनीकी वंदना करे ॥ ७९ ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ८०

सहस्रों अश्वमेध सेकडों वाजपेययज्ञोंका फलभी केवल सात्विक एक ध्यानावस्थाका सोलहवा अंश (भाग) के समान नहींहै अर्थात् यज्ञादि साधनाओंमेंभी श्रेष्ठ ध्यानयोग है॥८०॥

इति ध्यानप्रकरणम्.

उपाधिश्च तथा तत्त्वं द्वयमेतदुदाहृतम् ।
उपाधिः प्रोच्यते वर्णस्तत्त्वमात्माभिधीयते॥ ८१ ॥

अब १५ श्लोकमें समाधिविधि कहतेहैं आत्माके प्रकाश होनेवालेको उपाधि तथा आत्मचैतन्यको तत्त्व कहतेहैं उपाधि और तत्त्व ये दोनहूं मुख्य विचार्य्य हैं उपाधि प्रणवरूप वर्ण ॐ है तत्त्व आत्मा कहाताहै ॥ ८१ ॥

उपाधेरन्यथा ज्ञानतत्त्वसंस्थितिरन्यथा ।
समस्तोपाधिविध्वंसी सदाभ्यासेन जायते ॥ ८२ ॥

उपाधिसे यथार्थ वैषयिक अन्यही है अर्थात् विपरीत बोधक है जैसे स्फटिक तो स्वच्छ श्वेतमात्र है परंतु लाल, पीलो, नीलो आदि रंग (उपाधि) संबंधसे उसी रंगकासा समान होताहै तैसेही शरीरमें निर्विकार शुद्ध आत्मा विषयवास-

नाओंके संसर्गसे "अहं सुखी" "अहं दुःखी" इत्यादि भासमान होताहै जब अपनी निर्मलबुद्धिसे उपाधि पृथक् माने तब आत्मस्वरूपका यथार्थज्ञान होताहै जैसे रक्तादिरंगमें स्फटिक भी वैसा होताहै परंतु बुद्धिसे जो न कि स्फटिक तो शुद्धही है परंतु रक्तादि रंगोपाधिविकारसे मिथ्या रंग देखाजाताहै तैसेही इंद्रियधर्मोंसे आतभी जीवात्मा यथार्थज्ञानसे अद्वैतानंदस्वरूप है सुखदुःखका इसमें संबंध नहींहै ऐसा ज्ञानयोगाभ्याससे होताहै. तब योगी उपाधिजाल विनाश करनेमें समर्थ होताहै ॥८२॥

शब्दादीनां च तन्मात्रं यावत्कर्णादिषु स्थितम् ।
तावदेवं स्मृतं ध्यानं समाधिः स्यादतः परम् ॥८३॥

ध्यान एवं समाधिका अवस्थाभेद प्रकट करतेहैं कि ध्यानावस्थामें स्थिर रहते योगीके कर्णादि इंद्रियोंविषै शब्दादि विषयोंका सूक्ष्मभागभी जबलौं उपलभ्यमान होतेहैं, तभीलौं ध्यानावस्था कहातीहै जब आत्मामें पंचेंद्रियवृत्ति लीन होजांय तब आत्मामें अर्थमात्रका भान रहनेवाली अवस्था समाधि कहातीहै ॥ ८३ ॥

धारणा पञ्चनाडीभिर्ध्यानं च षष्टिनाडिभिः ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात् ॥ ८४ ॥

ध्यान-धारणा-समाधिका प्रमाण कहतेहैं कि प्राणवायुके व्यापार रोकनेमें पांच घटीपर्यंत धारणा कहातीहै ऐसेही ६० घटीसे ध्यान और बारह (१२) अहोरात्रपर्यंत प्राणवायुके व्यापार निरंतर रोकनेमे समाधि कहातीहै ॥ ८४ ॥

न गन्धं न रसं रूपं न च स्पर्शं न निःस्वनम् ।
नात्मानं न परस्वञ्च योगी युक्तः समाधिना ॥ ८८ ॥

योगीके समाधिमें रहनेके अवस्था व कहतेहैं कि जो योगी समाधिमें एकत्वको प्राप्त होजाताहै तो सर्व इंद्रियगण मनमें लीनताको प्राप्त होकर गंध, रस,रूप, स्पर्श, शब्द, इन पांच विषयोंको नहींजानता कोही वस्तुमात्र अपना वा पराया कुछ नहींजानता जीवात्मा तथा परमात्माको अलग नहींमानता एकही समझताहै इसप्रकार ध्यानमें एकाग्र होनेसे और किसी प्रकार भान नहींहोता ॥ ८८ ॥

अभेद्यः सर्वशास्त्राणामवध्यः सर्वदेहिनाम् ।
अग्राह्यो मन्त्रयन्त्राणां योगी युक्तः समाधिना ॥८९॥

जब योगी उक्त विधिसे समाधियुक्त होजाताहै तो समस्त शस्त्रोंसे अभेद्य (न कटनेयोग्य) होताहै (देही) मनुष्य, सिंह, गज, व्याघ्रआदियोंसे (अवध्य) नहीं मारजाता (मन्त्र) (यंत्र) मारणमोहनादि प्रयोग (जादू) भी उसपर नहींचलता ॥८९॥

बाध्यते न स कालेन लिप्यते न स कर्मणा ।
साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना॥९०॥

जब योगी समाधिमां स्थिर होजाताहै तो उसको जरा (बुढापा) एवं मरण (मृत्यु) पीडन नहीं करसकते अर्थात् अजरामर होजाताहै उसपर कालका वश नहींचलता पापपुण्य हैं हेतु जिसके ऐसे कर्मबंधनोंसे लिप्त नहींहोता और कोई उसे

विषयवासनामें नहीं लगायसकता किसीके साधनमें यह नहीं-आता ॥ ९० ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥९१ ॥

मिताहारयुक्त व्यवहारमें रहकर जो योगी समस्तकर्मोंमें युक्त रहताहै और निद्रा, जागरणभी युक्त रखताहै अर्थात् कोही कामभी अयुक्त (अति) नहींकरता पूर्वोक्त क्रियाओंमें सावधान रहताहै उसको योग दुःखनाशक कहाताहै ॥ ९१ ॥

निराद्यन्तं निरालम्बं निष्प्रपञ्चं निरामयम् ।
निराश्रयं निराकारं तत्त्वं जानाति योगवित् ॥ ९२ ॥

जब योगी उक्त विधिसे समाधिमें स्थिर होजाताहै तब परमतत्त्व जिसका (आद्यंत) जन्ममरण नहीं किसीके आलंबन (निमित्तमें) नहीं मायाआदि किसीके आश्रयमें नहीं द्वैतकल्पनामें नहींहै जन्ममरणादि दुःखमें नहीं ऐसे जीवात्मा परमात्माके ऐक्य होरहे आत्मस्वरूपतत्त्वको जानताहै ॥ ९२ ॥

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत् ।
व्योमविज्ञानमानन्दब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥ ९३ ॥

(निर्मल) कर्मके फल वासनारूप मलसे रहित (निश्चल) चेष्टारहित (नित्य) परिणामरहित (निष्क्रिय) सर्वव्यापारशून्य (निर्गुण) सत्त्वादिगुणरहित (महत्) जिसका परिमाण नहीं कियाजाता ऐसे (व्योम) चिदाकाशस्वरूप (विज्ञान) बोधस्वरूप